स्वतंत्रता दिवस 2001
विशेषांक

ISSN-0971-8397

विकास को समर्पित
मासिक

योजना

अगस्त, 2001 मूल्य : 15 रुपये

महिला सशक्तिकरण

IAS-2001-02

सामान्य अध्ययन	द्वारा **हेमन्त झा** एवं **के० सिद्धार्थ** – पाठ्यक्रम के नए विषय भारत एवं विश्व, अन्तर्राष्ट्रीय मामले, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थान एवं सामाजिक महत्व के विषय पर विशेष बल एवं विशेष अध्ययन सामग्री – तैयारी के रणनीति एवं उपगमन पर दिशा निर्देश।
भूगोल	द्वारा **के० सिद्धार्थ** – पाठ्यक्रम में सम्मिलित नवीन विषयों पर अतिरिक्त कक्षाएं – हिन्दी माध्यम के छात्रों के लिए विशेष रूप से तैयार की गई 20 पुस्तिकाएं एवं मानचित्र।
इतिहास	द्वारा **हेमन्त झा** – नएं पाठ्यक्रम के अनुसार इतिहास विषय के नए दृष्टिकोण एवं विचारों पर बल – प्रश्नोत्तर लेखन की विशेष कक्षाएं – नए पाठ्यक्रम की अध्ययन सामग्री – तैयारी की रणनीति एवं उपगमन पर विशेष पुस्तिकाएं।
अन्य विषय	हिन्दी साहित्य, लोक-प्रशासन एवं दर्शनशास्त्र

पत्राचार पाठ्यक्रम

सामान्य अध्ययन, भूगोल, इतिहास, हिन्दी साहित्य एवं दर्शनशास्त्र

हिन्दी तथा अंग्रेजी माध्यम में उपलब्ध

परिवर्द्धित एवं संशोधित अध्ययन सामग्री – प्रश्न पत्र प्रारूप – विद्यार्थियों के प्रश्नोत्तर की जाँच की व्यवस्था – दूरभाष वार्तालाप सुविधा – ई-मेल की सुविधा – समय–समय पर सुझाव, नई दिशा तथा उपगमन से संबंधित अध्ययन सामग्री।

CAREER POINT

A Centre of Excellence for Civil Services Examination

In alliance with

Centre for the Development of Environment and Resources

NORTH DELHI CENTRE : 2589, HUDSON LINES, KINGSWAY CAMP, DELHI-110 009, **Ph. : 724 0105**

SOUTH DELHI CENTRE : 30-B, BERSARAI, OPPOSITE JNU OLD CAMPUS, DELHI-110 016, **Ph. : 696 6168**

FOR OUTSTATION CALL : 011-271 4482 (10.00 p.m. to 12.00 p.m.) Contact : Nilesh Tripathi

e-mail : careerpoint@samparkonline.com, cender@satyam.net.in

छात्रावास की सुविधा उपलब्ध

विवरणिका के लिए 30 रू० का मनीआर्डर / ड्राफ्ट भेजें।

योजना

योजना और विकास को समर्पित भारत
के नव-निर्माण की प्रमुख मासिक पत्रिका

वर्ष : 45 अंक 5 अगस्त, 2001 श्रावण-भाद्रपद, शक संवत् 1923

प्रधान संपादक
सुभाष सेतिया
सहायक संपादक
अंजनी भूषण
उप संपादक
ललिता खुराना
संपादकीय कार्यालय
कमरा नं. 538 ए, योजना भवन, संसद मार्ग,
नई दिल्ली-110 001
दूरभाष : 3710473, 3717910
3715481/2510, 2508, 2566

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
डी.एन. गांधी
विज्ञापन एवं वितरण प्रबंधक
प्रकाश चन्द्र आहूजा
आवरण : **दीपायन मैत्रा**

पाठकों से

'**यो**जना' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त किए गए विचार लेखकों के अपने हैं। अत: यह जरूरी नहीं कि ये लेखक भारत सरकार के जिन मंत्रालयों, विभागों से सम्बद्ध हैं, उनका भी यही दृष्टिकोण हो।

इस अंक में

- **दर्शन, लक्ष्य और उपलब्धियां** — सुमित्रा महाजन — 3
- **जाग्रति और विकास की आवश्यकता** — मीरा सेठ — 7
- **साक्षरता एक आवश्यक शर्त** — सी. जयंती — 11
- **आर्थिक अधिकारिता का महत्व** — रत्ना एम. सुदर्शन — 15
- **आर्थिक स्वतंत्रता बनाम सामाजिक स्वतंत्रता** — हरजीत अहलूवालिया — 19
- **कानून और लिंग-भेद रहित न्याय** — सुजाता मनोहर — 23
- **कितने प्रभावी हैं कानून?** — कुसुम — 27
- **स्वयंसेवी क्षेत्र की भूमिका महत्वपूर्ण** — प्रदीप पंत — 31
- **पंचायती राज द्वारा अधिकारसम्पन्नता** — सुधा पिल्लै — 35
- **मानवाधिकार संरक्षण द्वारा अधिकारसंपन्नता** — जे. भाग्यलक्ष्मी — 39
- **साहित्य की भूमिका** — क्षमा शर्मा — 43
- **समानता के अधिकार की भावी दिशा** — लीना मेहेंदले — 49
- **भू-अधिकार और स्त्री-पुरुष समानता** — बीना अग्रवाल — 55
- **राष्ट्रीय महिला शक्ति-सम्पन्नता नीति 2001** — 64

इस अंक के लेखक

सुमित्रा महाजन, महिला और बाल विकास राज्य मंत्री; **मीरा सेठ,** योजना आयोग की पूर्व सदस्य; **सी. जयंती,** संपादक, एजुकेशन टाइम्स, नई दिल्ली; **रत्ना एम. सुदर्शन,** प्रमुख अर्थशास्त्री, राष्ट्रीय व्यावहारिक अनुसंधान परिषद; **हरजीत अहलूवालिया,** वरिष्ठ आर्थिक पत्रकार; **सुजाता मनोहर,** उच्चतम न्यायालय की भूतपूर्व जज एवं राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, नई दिल्ली की सदस्य; **कुसुम,** शोध प्रोफेसर, भारतीय विधि संस्थान; **प्रदीप पंत,** निदेशक, केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड; **सुधा पिल्लै,** संयुक्त सचिव, पंचायती राज, ग्रामीण विकास मंत्रालय; **जे. भाग्यलक्ष्मी,** स्वतंत्र पत्रकार; **क्षमा शर्मा,** उप संपादक, 'नंदन'; **लीना मेहेंदले,** भारतीय प्रशासनिक सेवा में संयुक्त सचिव; **बीना अग्रवाल,** दिल्ली विश्वविद्यालय के आर्थिक विकास संस्थान में अर्थशास्त्र की प्रोफेसर।

चंदे की दरें : वार्षिक : 70 रु.; द्विवार्षिक : 135 रु.; त्रैवार्षिक 190 रु.

...मंजिल अभी दूर...

''औरतों की स्थिति में सुधार लाए बिना दुनिया का कल्याण संभव नहीं है। एक पंख से चिड़िया उड़ान नहीं भर सकती।''

—स्वामी विवेकानंद

बाधाएं रास्ता रोकती हैं, उन्हें हटा दिया जाए तो गति को पंख लग जाते हैं। सशक्तिकरण का मामला भी कुछ ऐसा ही है। हमारी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक कुप्रथाओं का दंश हमारी महिलाओं के अधिसंख्य भाग को आज भी झेलना पड़ रहा है। इससे हमारा बहुत नुकसान हुआ है। इसे रोकना नितांत आवश्यक है। महिला सशक्तिकरण का मुद्दा जो काफी समय से उपेक्षित रहा है, अंततः सरकार का ध्यान आकर्षित करने में सफल हुआ है।

हमारे राष्ट्रीय जीवन में इसके गहन महत्व के मद्देनजर इस विशेषांक के लिए भी यही विषय चुना गया है। इसमें प्रबुद्ध लेखिकाओं को लेख लिखने के लिए आमंत्रित किया गया है ताकि वे अपने विचार पाठकों के सम्मुख रख सकें। क्षेत्र व्यापक है। महिला सशक्तिकरण के संबंध में अधिकारों एवं अवसरों के प्रति जाग्रति, कानूनी उपाय एवं उनका क्रियान्वयन, आर्थिक अधिकारसंपन्नता के लिए आर्थिक सशक्तिकरण, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में आरक्षण की व्यवस्था, आत्मसम्मान एवं आत्मविश्वास वृद्धि के उपाय, शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल, पोषण एवं अन्य सम्बद्ध सुविधाओं तक महिलाओं की पहुंच आदि सभी विषयों पर लेख शामिल किए गए हैं। यह एक रोचक तथ्य है कि विशेषांक के लगभग सभी लेख महिला लेखिकाओं द्वारा लिखे गए हैं और यह महिला सशक्तिकरण की दिशा में हमारा नवीन कदम है।

इस अंक में

दर्शन, लक्ष्य और उपलब्धियां

सुमित्रा महाजन

स्त्री-पुरुषों को समान अधिकार प्रदान करने की दिशा में बढ़ना तकनीकी लक्ष्य नहीं है, यह एक राजनीतिक कार्यविधि है। इसके लिए एक नई सोच की जरूरत है, जिसमें स्त्री-पुरुष एक ऐसे नए दर्शन या विचारधारा को स्वीकार करें जो सभी व्यक्तियों को, चाहे वे स्त्री हों या पुरुष, परिवर्तन के आवश्यक एजेंट समझती हो।

इस बात की पूरी संभावना है कि इतिहास इस शताब्दी की प्रगति का मूल्यांकन एक प्रमुख कसौटी पर करे और वह हो सम्यक न्याय। विभिन्न देशों ने जिस तेजी से आर्थिक प्रगति की हैं, उसमें सम्यक न्याय का प्रश्न बहुत प्रासंगिक हो जाता है। इसका सबसे स्थायी रूप स्त्री-पुरुष असमानता में देखा जा सकता है।

मैं समझती हूं यह पिछले वर्ष की बात है, जब हम देश में महिलाओं की स्थिति को अत्यंत विषम बनाने वाले अनेक नकारात्मक नतीजों से निपटने के लिए एक रणनीति बनाने का प्रयास कर रहे थे। मैंने माननीय प्रधानमंत्री से अनुरोध किया था कि वे सन 2001 को महिलाओं की अधिकारसम्पन्नता का वर्ष घोषित करें। इससे देश के विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत महिलाओं की सकारात्मक उपलब्धियों को आगे लाने का अवसर मिलेगा। इसके लिए पांच स्त्री-पुरुष पुरस्कार स्थापित किए गए। पुरस्कार-वितरण के समय पिछली जनवरी में प्रधानमंत्री ने महिला अधिकारिता वर्ष का शुभारम्भ किया।

यहां उल्लेख करना उचित होगा कि लगभग सभी देशों में सिविल समाज आंदोलन के भाग के रूप में महिलाओं को अधिकारसम्पन्न करने का कार्य लगभग प्राप्त कर लिया गया है। भारत में यह अधिकांशत: विकास की विचारधारा का अंग रहा है। स्त्री-पुरुष समानाधिकार की ओर बढ़ना तकनीकी लक्ष्य नहीं है, यह एक राजनीतिक कार्यविधि है। इसके लिए नई सोच की जरूरत है, जिसमें स्त्री-पुरुष एक ऐसे नए दर्शन या विचारधारा को स्वीकार करते हैं जो सभी व्यक्तियों को—चाहे वे स्त्री हो या पुरुष—परिवर्तन के आवश्यक एजेंट समझती है। इस संदर्भ में मानव विकास का उदाहरण 'एकात्मवाद', जो समन्वित विकास के केन्द्र में 'लोगों' को रखता है, और जिसका सुझाव श्री दीनदयाल उपाध्याय ने दिया था, एकदम प्रासंगिक हो जाता है। यह सुझाता है कि अधिकतम विकास के लिए विकास नीति को पूरी तरह से उत्पन्न और विकसित किया जाना चाहिए। वर्ष 1792 में मेरी वल्सटोनक्राफ्ट ने एक पुस्तक 'ए विंडीकेशन ऑफ दि राइट्स आफ वीमेन' प्रकाशित की। जिसमें कहा गया था कि विश्व में दानशीलता की नहीं, न्याय की कमी है। पुस्तक में विश्व के विभिन्न देशों में अधिकार-प्राप्ति के लिए महिलाओं के संघर्ष का चित्रण है, जो उन्नीसवीं शताब्दी में एक नए चरण में पहुंचा। इंग्लैंड को विवाह संबंधी कानूनों में संशोधन करना पड़ा। फ्रांस को महिलाओं के तलाक के अधिकार स्वीकार करने पड़े। चीन की महिलाओं को पदधारण का अधिकार देना पड़ा। 1893 में न्यूजीलैंड विश्व का पहला देश बना, जिसने महिलाओं को वोट का अधिकार प्रदान किया। बीसवीं शताब्दी के पहले दशक तक में चीन, ईरान, जापान, कोरिया आदि अनेक देशों में महिला आंदोलन मजबूत हो गया था। इस सदी के पहले चार दशकों के दौरान आस्ट्रिया, जर्मनी, तुर्की और उरुग्वे सहित अनेक देशों में महिलाओं को वोट का अधिकार प्राप्त हुआ। लगभग इसी समय अमेरिका में मारग्रेट सेनगर, स्वीडन में

'अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस' के अवसर पर प्रधानमंत्री से भेंट करता महिला सांसदों का दल

ऐलन की और जापान में शिजू इशीमोटो ने महिलाओं के (प्रजनक) अधिकारों के लिए अभियान शुरू किया।

तथापि अधिकारिता के किसी भी प्रयास में कम से कम निम्नलिखित तीन सिद्धांतों का शामिल होना जरूरी है: (क) स्त्री-पुरुष के बीच समानता को मूल सिद्धांत के रूप में स्वीकार किया जाए। समान अधिकारों के इस्तेमाल में रुकावट डालने वाली कानूनी, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक बाधाओं की पहचान की जाए और नीति संबंधी व्यापक सुधारों और मजबूत सकारात्मक कार्रवाईयों से उन्हें दूर किया जाए; (ख) महिलाओं को परिवर्तन का एजेंट और उससे लाभ प्राप्त करने वाला समझा जाए। महिलाओं की क्षमता में निवेश और उन्हें मनपसंद कार्य करने की अनुमति देना न केवल स्वयं अपने आप में महत्वपूर्ण है बल्कि आर्थिक विकास और समग्र विकास को बढ़ाने का सर्वोत्तम तरीका है; यद्यपि तैयार किया हुआ विकास का माडल स्त्री-पुरुष दोनों के लिए अधिक विकल्प उपलब्ध कराना चाहता है, उसे इस बात का निर्धारण नहीं करना चाहिए कि अलग-अलग संस्कृतियां और समाज इन विकल्पों का किस प्रकार इस्तेमाल करें। महत्वपूर्ण बात यह है कि स्त्री-पुरुष दोनों के लिए समान अवसरों का उपयोग करने का विकल्प हो।

लेकिन लगभग सभी समाजों में स्त्री-पुरुषों के बीच काम के बंटवारे में देखभाल एवं सेवा सुश्रूषा का दायित्व महिलाओं को सौंपा जाता है। इसके लिए उन्हें परिवार और समाज द्वारा कोई पारिश्रमिक या मानदेय नहीं दिया जाता। वर्ष 1995 की 'ह्यूमन डेवलेपमेंट रिपोर्ट' (मानव विकास की रपट) में अनुमान लगाया गया है कि महिलाओं को अपने कुल कामकाजी समय के दो-तिहाई भाग के लिए कोई भुगतान नहीं किया जाता और इसे अवैतनिक काम समझा जाता है (पुरुष अपने समय का केवल एक-चौथाई भाग इस काम में लगाते हैं) और इसमें से अधिकांश समय देखभाल, सेवा-सुश्रूषा में लगता है। महिलाओं को लम्बे समय तक काम करना होता है, उनका काम कठिन एवं कठोर होता है—उदाहरण के लिए पानी लाना और ईंधन एकत्र करना। यह स्थिति विशेष रूप से विकासशील देशों के ग्रामीण क्षेत्रों में है। नेपाल में औरतें प्रति सप्ताह पुरुषों से 21 घंटे अधिक और भारत में 12 घंटे अधिक काम करती हैं। केनिया में 8 से 14 वर्ष तक की लड़कियां लड़कों की तुलना में 5 घंटे अधिक घर का काम करती हैं। काम के बोझ की यह असमानता उन महत्वपूर्ण बाधाओं में एक है जिसका सामना महिलाओं को अपने पसन्दीदा अवसर चुनने में करना पड़ता है।

इस संबंध में हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि मानव विकास का पोषण न केवल आय वृद्धि, स्कूली शिक्षा, अच्छा स्वास्थ्य, अधिकारिता एवं स्वच्छ पर्यावरण से होता है बल्कि देखभाल और सेवा-सुश्रूषा से भी होता है। देखभाल, जिसे कभी-कभी सामाजिक उत्पादन भी कहा जाता है, आर्थिक संपोषण के लिए भी आवश्यक है। वैश्वीकरण देखभाल और देखभाल वाले श्रम को दबा रहा है।

स्त्री-पुरुष अपने समय का इस्तेमाल किस बदले तरीके से करते हैं, उससे देखभाल और सेवा सुश्रूषा के काम का समय घट रहा है। राज्य पर जो वित्तीय दबाव पड़ रहा है, उससे देखभाल सेवाओं के सरकारी खर्च में कमी आ रही है और व्यापारिक और गैर-व्यापारिक क्षेत्रों के वेतन एवं मजदूरी के बीच जो खाई है, उससे बाजार में सेवा सुश्रूषा के कार्यों की आपूर्ति में कमी आ रही है। लिंग-भेद इन प्रभावों का प्रमुख कारण है, क्योंकि विश्व भर में औरतें ही इन गतिविधियों की जिम्मेदारी और उनका बोझ उठाती हैं।

किसी भी विकासशील समाज में विकास का एक आयाम आर्थिक अधिकारिता है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। सरकार ने राष्ट्रीय महिला कोष द्वारा अनेक नई पहलें शुरू की हैं और महिलाओं के विकास के लिए लघु ऋण कार्यक्रम मजबूत बनाया है। आर्थिक विकास का कार्य जब तक पूरा नहीं हो सकता जब तक संसाधनों तक पहुंच सुनिश्चित नहीं की जाती। इसका एक महत्वपूर्ण घटक टेक्नालॉजी है। विकास के लिए संयुक्त राष्ट्र विज्ञान और टेक्नालॉजी आयोग ने 'मिसिंग लिंक' 1995 में ठीक ही कहा है, ''विज्ञान और टेक्नालॉजी का विकास और कार्यान्वयन उस सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ में किया जाना चाहिए, जो यह मानता हो कि विज्ञान एवं टेक्नालॉजी तक महिलाओं की पहुंच कम होते हुए भी वे पर्यावरण-आधारित अपनी जिम्मेदारियों और कौशल में उसका उपयोग कैसे कर लेती हैं।'' हमारे ग्रामीण जीवन की अनेक गतिविधियां ऐसी हैं जिनमें औरतें, विशेषकर देसी ज्ञान की रक्षा एवं उसके संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान करती हैं। हम जानते हैं कि परम्परागत दवाइयां, लघु-स्तर पर खाद्यान्न सुरक्षा, बीज-संरक्षण, ऊर्जा प्रबंध और यहां तक कि उद्यमशीलता कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जिनका संचालन महिलाएं सफलता से करती आ रही हैं। तथापि हमें महिलाओं की इस परंपरागत भूमिका को नया आयाम देने और आधुनिक विज्ञान एवं टेक्नालॉजी से उन्हें अधिक लाभ पाने योग्य बनाने के लिए इन प्रयासों को नई शक्ति प्रदान करनी होगी। इस संबंध में महिला एवं बाल विकास विभाग ग्रामीण विकास मंत्रालय और विज्ञान एवं टेक्नालॉजी विभाग के सहयोग से चुनिंदा गांवों में ग्रामीण टेक्नालॉजी केन्द्र की स्थापना का प्रयास करेगा।

हमारी नीति का दूसरा महत्वपूर्ण अंग है महिलाओं के विरुद्ध अत्याचारों पर पूर्ण नियंत्रण। ये अत्याचार अनेक रूपों में बढ़ रहे हैं। लड़कियों की भ्रूण हत्या इनमें एक है। सरकार ने इसे रोकने के कई उपाय किए हैं।

सरकारी पहल

भारत में कानूनी तौर पर स्त्री-पुरुषों को समानाधिकार प्राप्त हैं। सामाजिक क्षेत्र की घटनाओं के संदर्भ में स्त्री-पुरुष समानता पर जोर देने का अर्थ है सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के एजेंट के रूप में महिलाओं को अधिकार प्रदान करना। औरतें और बच्चे जो देश की कुल जनसंख्या का 67.7 प्रतिशत हैं, आज विकास के संदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य-वर्ग हैं। इस बात की ओर तत्काल ध्यान देना आवश्यक है कि देश के विकास में मजबूत और प्रभावी शक्ति बनाने के लिए महिलाओं को आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से अधिकारसंपन्न करना जरूरी है। वर्तमान कानूनों और महिला परसम्पत्ति अधिकार एवं उनकी सामाजिक हैसियत सुधारने की सरकारी योजनाओं की समीक्षा के लिए महिलाओं और बच्चों पर एक कार्यदल का गठन किया गया है।

नौवीं योजना (1997-2002) में खासतौर पर कहा गया है कि महिला संघटक योजनाओं की पहचान की जाए जिसके लिए कम से कम 30 प्रतिशत निधियां महिलाओं की विकास योजनाओं में लगाई जाएं। महिला कल्याण की कुछ विशिष्ट योजनाएं हैं जिनके लिए हर बजट में धन आबंटित किया जाता है। महिला समृद्धि योजना, बालिका समृद्धि योजना, वर्किंग वूमन्स होस्टल (कामकाजी महिला छात्रावास) स्वशक्ति परियोजना और ऐसी ही महिलाओं के कल्याण की 29 योजनाओं के लिए 2000-2001 के केन्द्रीय बजट में 856.64 करोड़ रुपये आबंटित किए गए थे जबकि 1999-2000 में (सं अ.) 605.46 करोड़ रुपये आबंटित किए गए थे। नौवीं योजना (1997-2002) के दौरान एक प्रमुख रणनीति के रूप में पहली बार वूमन्स कम्पोनेंट प्लान (डब्ल्यू.सी.पी.) शुरू किया गया। अगस्त 2000 में इसकी समीक्षा की गई। समीक्षा से पता लगा कि इस योजना को अनेक मंत्रालयों/विभागों जैसे कि स्वास्थ्य और परिवार नियोजन, मानव संसाधन विकास, श्रम, कृषि, ग्रामीण विकास, सामाजिक न्याय और अधिकारिता, जनजातीय मामलों आदि से महिलाओं को लाभ पहुंचाने के लिए धन उपलब्ध कराया गया है। कुछ राज्यों जैसे कि गुजरात, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक और केरल ने भी डब्ल्यू.सी.पी. के अन्तर्गत धन की व्यवस्था की।

राष्ट्रीय महिला कोष (आर.एम.के.) की स्थापना गरीबों और सम्पत्तिविहीन औरतों की छोटे ऋणों की आवश्यकता पूर्ति के लिए 1993 में अनौपचारिक क्षेत्र में की गई। अपनी स्थापना से यह 3,50,000 महिलाओं को लाभ पहुंचाने के लिए 77.36 करोड़ रुपये के ऋण मंजूर कर चुका है। आर.एम.के. की ऋण वसूली दर 90 से 95 प्रतिशत तक रही है, जो असाधारण है। इसने ग्राम-स्तर पर अपने संस्थागत आधार का विस्तार किया है ताकि यह अधिक लोगों को ऋण सुविधाएं दे सके। ऐसा करते हुए इसने महिलाओं के ऐसे ही अन्य वर्तमान संस्थाओं-समूहों से संबंध विकसित किए हैं। इन गतिविधियों को बढ़ाने के लिए आर.एम.के. को अतिरिक्त सरकारी वित्तीय सहायता की आवश्यकता होगी।

तथापि भारत और वास्तव में सम्पूर्ण दक्षिण एशिया में एक चिन्तनीय समस्या है—महिलाओं की संख्या में कमी। दक्षिण एशिया को छोड़कर विश्व में महिला-पुरुष अनुपात 106:100 है। भारत में 1991 में 93 महिलाओं के पीछे 100 पुरुष थे। इसका सीधा-सा अर्थ है कि जनसंख्या में लाखों औरतें शामिल नहीं हैं। उनका जीवन या तो जन्म से पहले ही समाप्त कर दिया गया या लगातार कुपोषण के कारण वे काल के ग्रास में समा गईं या चिकित्सा सुविधा न मिलने के कारण अकाल मृत्यु को प्राप्त हो गईं! स्त्री-पुरुष संख्या में यह कमी 1980 के दशक में ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष रूप से नजर आई। महिलाओं के साथ यह असमानता जन्म के समय ही शुरू हो जाती है। वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार जन्म के समय 109.5 जीवित लड़कों की तुलना में केवल 100 जीवित लड़कियों ने जन्म लिया।

'महिला अधिकारिता वर्ष' इस उद्देश्य से मनाया जा रहा है कि न केवल स्त्री-पुरुष समानता के उद्देश्य से नीतियों में आवश्यक परिवर्तन किए जाएं, बल्कि समाज के नजरिए में भी परिवर्तन लाया जाए। इस विषय में सरकार की वचनबद्धता के अंग के रूप में महिलाओं के लिए नई राष्ट्रीय नीति की घोषणा की गई है। साथ ही राष्ट्रीय विकास में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए अनेक अन्य उपाय भी किए गए हैं।

मेरा हमेशा से यह विचार रहा है कि महिलाओं को केवल पूर्णांक की तरह नहीं देखा जाना चाहिए। राष्ट्रीय विकास में उनके योगदान की मात्रा को यदि निर्धारित भी किया जाए तो वह भ्रामक होगा क्योंकि उनका वास्तविक योगदान कहीं अधिक होता है। महिलाओं के योगदान को मां के रूप में, आगामी पीढ़ियों में नैतिक मूल्य और सामाजिक लोकाचार (सदाचार) की संरक्षिका के रूप में निर्धारित करना आसान नहीं है लेकिन राष्ट्र निर्माण में उनका निश्चित योगदान है। अगर 'महिला अधिकारिता वर्ष' के दौरान महिलाओं के कार्यों को समुचित महत्व दिया जाए तो उससे सही अर्थों में एक नए भारत, आधुनिक भारत की आधारशिला रखने में सहायता मिलेगी। ❑

(सुश्री सुमित्रा महाजन मानव संसाधन विकास मंत्रालय में महिला और बाल विकास विभाग से संबद्ध राज्यमंत्री हैं।)

RAO IAS

THE MOST POPULAR INSTITUTE FOR IAS AND PCS

विशेषताएं - 96% सफलता IAS/PCS (Pre) में
52% FINAL SELECTION

ALLAHABAD हिन्दी माध्यम पत्राचार कोर्स एवं क्लास कोचिंग, छात्रावास उपलब्ध
• IAS/PCS (Pre/Main) का सम्पूर्ण पत्राचार कोर्स उपलब्ध
निकट हनुमान मन्दिर, सिविल लाइन्स, इलाहाबाद फोनः 601624
नया पता - 14/1, स्टैनली रोड, (लोक सेवा आयोग के सामने), इलाहाबाद

LUCKNOW HINDI AND ENGLISH MEDIUM
• Pre and Pre cum Main Courses are Available • 18 months package for full course
36, Ravindra Garden, Aliganj, Lucknow. Ph. 331548 (Hostel Available for Boys & Girls)

VARANASI हिन्दी माध्यम
• छात्रावास एवं लाइब्रेरी की सुविधा उपलब्ध • PCS (J) Course available
चित्रगुप्त होटल, निकट कैन्ट रेलवे स्टेशन, वाराणसी फोनः 208061 Mobile 9839087054

• IAS/PCS (Pre & Main) बैच 17 जुलाई से प्रारम्भ
विषय : सामान्य अध्ययन, इतिहास, लोक प्रशासन, राजनीति शास्त्र, समाज शास्त्र, अर्थशास्त्र, हिन्दी साहित्य, मानव शास्त्र, भूगोल, जन्तु विज्ञान।

विवरण पुस्तिका हेतु रू० 30/- M.O. से भेजें

NOTE - We have branches at ALLAHABAD, LUCKNOW & VARANASI Only.
U.G.C.(JRF/NET)Batch Also Available

यह प्रतिष्ठित संस्था 15 वर्ष पुरानी है, कुछ लोग हमारी संस्था RAO IAS के नाम को तोड़ मरोड़कर अनावश्यक रूप से छात्रों को भ्रमित कर रहे हैं। कृपया उनसे सावधान रहें।

जाग्रति और विकास की आवश्यकता

मीरा सेठ

आबादी में करीब 50 प्रतिशत का हिस्सा रखने वाली महिलाएं यदि अशिक्षित बनी रहीं तो देश विकसित देशों की श्रेणी में नहीं आ सकता। मीडिया को इस तथ्य को प्रचारित-प्रसारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। महिलाओं को विकास के लाभों में बराबरी का हकदार बनाने के लिए एक सकारात्मक, आशाजनक और उत्साहवर्धक वातावरण बनाना आवश्यक है।

महिलाओं को अधिकारसम्पन्न बनाने के लिए सर्वप्रथम उन्हें विकास के बारे में जाग्रत करना होगा। इसके लिए सबसे महत्वपूर्ण बात है कि वह जिस समाज और समुदाय में जन्म लेती हैं, उस समाज और समुदाय की उसके बारे में धारणा स्वस्थ वातावरण पर आधारित हो। महिलाओं को यदि आर्थिक और भावनात्मक रूप से बोझ मान लिया जाता है तथा यह समझकर चला जाता है कि उसको जीवन भर सहारे और संरक्षण की जरूरत है, वह परिवार और समाज के लिए कुछ नहीं कर सकती है तो एक लड़की के जन्म से पहले ही उसके विकास के अवसर कम हो जाते हैं।

हम जानते हैं कि भारत में हर जाति, हर धर्म, हर समाज और हर क्षेत्र में पुत्री के जन्म पर पुत्र के जन्म की तरह खुशी नहीं मनाई जाती। इसलिए देश में महिलाओं का अनुपात घटने के बारे में लोगों को सजग करना जरूरी है। वर्ष 1901 में देश में महिला-पुरुष अनुपात 970:1000 का था। वर्ष 2001 की जनसंख्या के प्रारंभिक अनुपातों के अनुसार यह घटकर 933:1000 रह गया है। विचारणीय प्रश्न यह है कि यह ऐसे समय में हुआ है जबकि महिलाओं के विकास के प्रयासों में उत्तरोत्तर तेजी लाई गई है और महिलाओं की औसत आयु 1901 के 23.3 वर्ष से बढ़कर 2000 में 65.6 वर्ष और साक्षरता-दर 0.60 प्रतिशत से बढ़कर 54.16 प्रतिशत तक पहुंच गई है। इसका कारण है—अमीनोसेंटेसिस और अल्ट्रासाउंड तकनीकों का गलत इस्तेमाल कर मादा कण को गर्भ में ही समाप्त करने की बढ़ती प्रवृत्ति। जो आविष्कार गर्भवती महिलाओं के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए किए गए थे, उसका प्रयोग लड़कियों के जन्म को रोकने के लिए किया जा रहा है। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए रेग्यूलेशन आफ एमीनोसेंटेसिस एक्ट, 1993 पारित किया गया और इसके बाद में कुछ और संशोधन आए लेकिन इससे प्रौद्योगिकी का दुरुपयोग नहीं रुका।

समाज यह नहीं सोच पा रहा है कि महिलाओं का अनुपात घटने से सामाजिक असंतुलन पैदा होगा जिससे महिलाओं का शोषण और बढ़ जाएगा। हमें समाज में इस खतरे के प्रति जागरुकता बढ़ानी होगी और महिलाओं को विशेष रूप से जाग्रत करना होगा ताकि वे भ्रूण हत्या के लिए डाक्टरी जांच करवाने से इंकार कर दें। साथ-साथ यह सामाजिक जाग्रति भी उत्पन्न करनी होगी कि परिवार में महिलाओं की प्रमुख भूमिका है। महिलाएं नैतिक मूल्यों को आगे बढ़ाने वाली और भविष्य की पीढ़ी को स्वस्थ रखने वाली हैं। समाज को यह समझना चाहिए कि देश के आर्थिक क्रियाकलाप में भी महिलाएं बड़ा योगदान कर रही हैं। कृषि मजदूरों में महिलाओं का बड़ा हिस्सा है—वे बागवानी, मृदा-संरक्षण और वनों के रखरखाव में भी बड़ी भूमिका निभा रही हैं। कुटीर, ग्रामीण और घरेलू उद्योग महिलाओं के बलबूते पर चल रहे हैं।

इनमें पुरुषों की भूमिका माल को बाजार तक पहुंचाने या बहुत भारी काम में हाथ बंटाने तक की होती है। शिक्षा विभाग द्वारा वर्ष 1998-99 के लिए जारी आंकड़ों के अनुसार प्राथमिक स्कूलों में 34.55 प्रतिशत, जूनियर हाईस्कूल शिक्षा में 36.28 प्रतिशत, माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में 33.15 प्रतिशत महिला शिक्षक हैं। इस तरह शिक्षा के क्षेत्र में भी उनकी भूमिका महत्वपूर्ण है। स्वास्थ्य क्षेत्र में अर्ध-चिकित्सकीय कर्मचारियों, तकनीशियनों और नर्सों में बड़ी संख्या महिलाओं की है। महिलाओं की इस सकारात्मक छवि को बढ़ाने के लिए समाज के हर वर्ग को दहेज जैसी कुप्रथा और महिला-उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्ष छेड़ देना चाहिए क्योंकि मुख्यत: इन्हीं बुराइयों के कारण माता-पिता पुत्री जन्म को अभिशाप मानने लगते हैं। इस प्रयास में महिला और पुरुष दोनों को शामिल होना होगा। इसके लिए स्कूलों और महाविद्यालयों के पाठ्यक्रमों, युवक मंडलों, नेहरू युवक केन्द्र जैसे संगठनों और राजनीतिक दलों के स्तर पर एक व्यापक आंदोलन चलाने की आवश्यकता है। साथ ही कानूनी प्रावधानों को और मजबूत बनाया जाना चाहिए। सरकार भी महिलाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार के क्षेत्र में न केवल कानूनी बल्कि वास्तविक रूप से बराबरी का अधिकार देकर इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान कर सकती है।

शासन में बैठे लोगों में भी महिला-पुरुष समानता की भावना सही अर्थों में स्थापित करनी होगी। इसमें राजनीतिज्ञों, प्रशासनिक और पुलिस अधिकारियों और न्यायपालिका अधिकारियों सभी को शामिल करना होगा। यह तभी संभव है जब इन सभी क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाई जाए।

शासन में बैठे लोगों में भी महिला-पुरुष समानता की भावना सही अर्थों में स्थापित करनी होगी। इसमें राजनीतिज्ञों, प्रशासनिक और पुलिस अधिकारियों और न्यायपालिका अधिकारियों सभी को शामिल करना होगा। यह तभी संभव है जब इन सभी क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाई जाए। स्वाधीनता के बाद विभिन्न चुनावों के माध्यम से संसद में महिलाओं का प्रतिनिधित्व 2.8 प्रतिशत तक सीमित रहा है। इसको बढ़ाने की आवश्यकता है ताकि महिलाओं को अपने समुदाय का और अच्छी तरह प्रतिनिधित्व करने का अधिकार मिले और वे महिला विकास की मुहिम चलाने का अवसर प्राप्त कर सकें। केन्द्र और राज्यों के मंत्रिमंडल और अन्य सभी सलाहकार और नीति-निर्माता निकायों में भी महिलाओं की संख्या बढ़ाने की आवश्यकता है। वर्ष 1996 में भारतीय प्रशासनिक सेवा में केवल 9.9 प्रतिशत और भारतीय पुलिस सेवा में 2.2 प्रतिशत महिलाएं थीं। इन सेवा क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के लिए छात्राओं को अवसरों की जानकारी देने और उनके लिए विशेष कोचिंग केन्द्र खोलने की आवश्यकता है। केन्द्र सरकार के मुख्य और अर्ध-सरकारी क्षेत्रों में महिलाओं की संख्या कम से कम 30 प्रतिशत तक ले जाने के लिए विशेष अभियान चलाने की आवश्यकता है। वर्ष 1999 में इन दोनों क्षेत्रों में महिला कर्मचारियों का हिस्सा क्रमश: 9.3 प्रतिशत और 12.7 प्रतिशत था। इसी तरह राज्य सरकारों के स्तर पर भी मुख्य और अर्ध-सरकारी क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी क्रमश: 45.6 प्रतिशत और 7.6 प्रतिशत से बढ़ाकर पुरुषों के बराबर की जानी चाहिए। इसी प्रकार सार्वजनिक और निजी क्षेत्र की कंपनियों में महिलाओं की संख्या को 1997 के 4,63,7,000 की तुलना में ऊपर ले जाने की आवश्यकता है। जैसाकि सभी जानते हैं असंगठित क्षेत्रों में ज्यादातर महिलाएं कृषि कार्य में लगी हैं। इनमें 34.6 प्रतिशत अपनी खेती-बाड़ी में और 44.2 प्रतिशत कृषि मजदूर के रूप में कार्य कर रही हैं। वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार 5.9 प्रतिशत महिलाएं घरेलू उद्योगों में लगी हैं। इनमें अधिकांश महिलाओं से कम वेतन पर सीमांत श्रमिक के रूप में काम कराया जाता है। सरकारी और गैर-सरकारी प्रयासों से महिलाओं को तकनीकी शिक्षा और कौशल सुधार के अच्छे अवसर उपलब्ध कराए जाने चाहिए ताकि उन्हें असंगठित क्षेत्र में भी ऊंचे पारिश्रमिक वाले काम मिल सकें। स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना, सपोर्ट फार ट्रेनिंग एण्ड एम्प्लायमेंट प्रोग्राम 'स्टेप' और 'नोराड' जैसी विशेष योजनाओं से महिलाओं को रोजगार के क्षेत्र में प्रवेश के अवसर तो मिले हैं लेकिन इन योजनाओं के अंतर्गत अभी कम ही महिलाएं प्रशिक्षित की जा रही हैं। इनकी संख्या बढ़ाने की आवश्यकता है। सरकार को शिक्षित महिलाओं में बढ़ती बेरोजगारी की समस्या से भी निपटना होगा। फिलहाल उपलब्ध 1987-88 तक के आंकड़ों के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में 37.30 प्रतिशत स्नातक महिलाओं को

महिला जाग्रति में योगदान देता एक प्रौढ़-शिक्षा केन्द्र

रोजगार की तलाश के बावजूद नौकरी नहीं मिली। शहरी इलाकों में यह अनुपात 21 प्रतिशत रहा। इसके विपरीत पुरुषों में यह अनुपात क्रमश: 14.98 और 7.48 प्रतिशत था।

सरकारी प्रयासों को जनता तक पहुंचाने में लगी सरकारी मशीनरी का विश्लेषण करें तो पाते हैं कि महिलाओं के प्रति जो संवेदनशीलता सर्वत्र होनी चाहिए, वह नहीं बन पाई है। केन्द्र और राज्य सरकारों में आई.ए.एस., आई.पी.एस. और न्यायिक सेवा के अधिकारियों ने महिलाओं की स्थिति और उनकी विशेष आवश्यकताओं के बारे में संवेदनशीलता बनाने के लिए बहुत से यत्न किए हैं। राज्यों में अधिकारी प्रशिक्षण स्कूलों में अनेक संगोष्ठियों और प्रशिक्षण कार्यशालाओं का आयोजन होता रहता है लेकिन प्रशासन को हर स्तर पर महिलाओं के प्रति संवेदनशीलता बनाने का लक्ष्य अभी हासिल नहीं हो सका है। इसके अलावा अभी ब्लाक और ग्राम-स्तर के कार्यकर्ताओं को महिला संबंधी मानकों के प्रति संवेदनशील बनाने का कोई प्रयास नहीं हुआ है। जनता के बीच कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करने की इच्छाशक्ति हो तो थोड़े धन से ही चमत्कार किया जा सकता है। नई दिल्ली के सेंटर फार डेवलपमेंट स्टडीज द्वारा मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश में महिला पंचायत सदस्यों पर कराए गए सर्वेक्षणों से यह बात सामने आई है कि इस मामले में पंचायत निकायों की कारगर भूमिका हो सकती है।

इस सबसे बढ़कर महिलाओं में स्वयं अपनी क्षमता और विकास के अधिकार के प्रति अधिक जाग्रति पैदा की जानी चाहिए। भारतीय महिलाओं में आत्मविश्वास की कमी नहीं है पर उन्हें व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों तरह से अपनी क्षमता और अधिकार का बोध होना चाहिए। माता-पिता लड़कियों में विश्वास रखें और परिवार तथा समाज में स्वीकृति और समझ का स्वस्थ वातावरण हो तो महिलाओं का आत्मविश्वास और बढ़ेगा। योग, खेलकूद और साहसिक यात्राओं में बड़े पैमाने पर भागीदारी से इसे और दृढ़ किया जा सकता है। जैसाकि पहले ही कहा जा चुका है शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार के अवसरों में पूर्ण समानता से महिलाओं में आत्मविश्वास और सशक्त होगा। महिलाओं को समूहबद्ध कर सामूहिक आत्मविश्वास बढ़ाया जा सकता है लेकिन महिलाओं को इस दिशा में मिलकर काम करने के लिए जितना प्रयास करना चाहिए उतना प्रयास अभी नहीं हुआ है। जहां ऐसे प्रयास हुए हैं उनमें काफी हद तक कामयाबी मिली है। आंध्र प्रदेश में 6 स्वयंसेवी समूह 'डेवलपमेंट आफ वूमेन एण्ड चिल्ड्रेन इन रूरल एरिया (डवाकरा)' द्वारा शराबखोरी के खिलाफ चलाई गई मुहिम इसका एक सशक्त उदाहरण है। हरियाणा में महिलाओं ने स्वयंसेवी समूहों की मदद से ग्रामीण क्षेत्रों में शराब की बिक्री रोकने के खिलाफ आंदोलन चलाया जिसके परिणामस्वरूप राज्य सरकार को वहां पूर्ण मद्यनिषेध लागू करना पड़ा जबकि हरियाणा अपेक्षाकृत अधिक पुरातनपंथी समाज है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि महिलाओं को अपनी क्षमता और अधिकारों के बारे में सजग करने के लिए स्वयंसेवी संगठनों के माध्यम से प्रयास तेज किए जाएं और इसमें सरकार वित्तीय रूप से सहायता करे।

राजस्थान में 1980 के दशक में शुरू किया गया 'वूमेंस डेवलपमेंट प्रोग्राम' (डब्ल्यू.डी.पी.) महिलाओं को संगठित और जाग्रत करने के प्रयासों में सफलता का एक प्रमुख उदाहरण

है। इस कार्यक्रम के तहत गठित समूहों की सदस्यों और स्वयंसेविकाओं ने कई मामलों में निरक्षर महिलाओं को उनके जमीन-जायदाद के अधिकार दिलाने में सफलता प्राप्त की। राष्ट्रीय-स्तर पर चर्चित एक मामले में एक साधारण कुम्हार महिला ने बलात्कार के मामले में न्यायालय के माध्यम से न्याय पाने के लिए अपने गांव के जमींदारों और प्रशासन को डटकर मुकाबला किया। इस प्रकार हरियाणा में 1994 में शुरू किया गया समेकित महिला विकास कार्यक्रम भी सफल रहा है। महिला एवं बाल विकास विभाग को 'स्टेप' कार्यक्रम से दूर-दराज के पर्वतीय अंचलों और अल्पसंख्यकों में भी जाग्रति पैदा करने में सफलता मिली है। उत्तर प्रदेश (उत्तरांचल) के अल्मोड़ा जिले में शुरू की गई एक महिला दुग्धशाला से उस क्षेत्र में गरीब पर्वतीय महिलाओं में आशा का संचार हुआ है। वहां आज महिलाएं बहुत ही अच्छी किस्म की चाकलेट बना रही हैं। उत्तर प्रदेश की कला एवं हस्तशिल्प परिषद द्वारा चिकनकारी की एक परियोजना मंजूर की गई जिससे मुस्लिम समुदाय की युवतियों को अपने घर की चहारदीवारी से बाहर की दुनिया और विकास के अधिकार को जानने-पहचानने का अवसर मिला। हैदराबाद की अमीना नाम की एक मुस्लिम लड़की के एक अरबी बूढ़े से ब्याह की कहानी के बाद शहर के गरीब इलाकों में रोजगार और प्रशिक्षण की कई परियोजनाएं शुरू की गईं जिससे लोगों को समझ में आया कि बालिकाओं की कच्ची उम्र में शादी न की जाए तो वे बहुत कुछ कर सकती हैं। यहां इन परियोजनाओं का प्रभाव यह रहा कि आत्मविश्वास से भरी सभी लड़कियों के मन में सरकारी अधिकारी बनने की इच्छा जाग्रत होने लगी। इन परियोजनाओं से यह सिद्ध हो गया कि महिलाओं को जाग्रत करने और आत्मनिर्भर बनाने की आवश्यकता है। कुछ अन्य राज्यों में भी स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा इस दिशा में प्रयास किए गए हैं। इसके लिए सरकारी और आवश्यकता हो तो अंतरराष्ट्रीय सहायता ली जानी चाहिए। होना यह चाहिए कि ऐसी परियोजनाएं न केवल शुरू हो बल्कि इन्हें लम्बे समय तक चलाया भी जाए। तभी महिलाओं को आंदोलित किया जा सकता है।

यह भी जरूरी है कि हाईस्कूल और महाविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में महिलाओं के संवैधानिक अधिकारों के बारे में जानकारी शामिल की जाए और उनके लिए सकारात्मक कार्य हेतु विशेष कानून बनाए जाएं। केन्द्र सरकार के महिला और बाल विकास विभाग ने महिलाओं के अधिकारों और उनके हितों के संरक्षण-संवर्धन के लिए बनाए गए कानूनों की जानकारी के लिए 1990 के दशक में सरल भाषा में कई पुस्तिकाएं प्रकाशित की थी। इनमें यह भी बताया गया था कि अनुपालक एजेंसियों के माध्यम से किस प्रकार इन अधिकारों को हासिल किया जा सकता है। यह भी महत्वपूर्ण है कि महिला अधिकार आयुक्त इस बात का निरीक्षण और निगरानी करें कि महिलाओं को न्याय व्यवस्था से न्याय किस प्रकार मिल रहा है। महिलाओं को व्यक्तिगत रूप से सहायता और उनके लिए कार्यरत स्वयंसेवी संगठनों को भी उपयुक्त कानूनी सहायता सुनिश्चित की जानी चाहिए। केन्द्र और राज्य सरकारों के विभागों तथा निकायों की शिकायत-निवारण व्यवस्था के कामकाज की निगरानी करने वाले वरिष्ठ अधिकारियों को निरंतर यह देखते रहना चाहिए कि महिलाओं द्वारा लाई गई शिकायतों का निपटान किस तरह हो रहा है। इसके अलावा स्वयंसेवी संगठनों को सरकारी सहायता देते समय उन पर अपने कार्यक्रमों में महिला जाग्रति और महिलाओं की विशेष आवश्यकताओं के बारे में लोगों को सचेत करने का दायित्व भी डाला जाना चाहिए, फिर चाहे ये संगठन महिला, पुरुष, बच्चों या किसी भी क्षेत्र में कार्य कर रहे हों।

इस सबके साथ यह भी जरूरी है कि मीडिया, खासकर सिनेमा और टेलीविजन महिलाओं की उपलब्धियों तथा देश के सामाजिक-आर्थिक विकास में महिलाओं की भूमिका को सकारात्मक रूप से प्रस्तुत करें। महिलाओं के आदर्श के रूप में सक्रिय और सफल महिलाओं को प्रस्तुत किया जाना चाहिए, न कि विलाप करने वाली, कानाफूंसी और तिकड़म में लगी महिलाओं को जैसा कि मीडिया अधिकांशत: करता रहता है। महिलाओं के साथ अन्याय की घटनाओं को सनसनीखेज समाचार के रूप में नहीं बल्कि एक शर्मनाक विषय के रूप में रखा जाना चाहिए और बताया जाना चाहिए कि वैश्वीकरण के प्रयासों के बावजूद अब भी महिलाओं को बराबर नहीं समझा जाता। मीडिया को यह बात स्पष्ट रूप से कहनी चाहिए कि आबादी में करीब 50 प्रतिशत का हिस्सा रखने वाली महिलाएं यदि अशिक्षित बनी रहीं तो देश विकसित देशों की श्रेणी में नहीं आ सकेगा। महिलाओं को विकास के लाभ में बराबर का हकदार बनाने के लिए एक सकारात्मक, आशाजनक, उत्साहवर्धक और प्रोत्साहित करने वाला वातावरण निर्मित करना होगा। ❑

(डा. मीरा सेठ योजना आयोग की भूतपूर्व सदस्य हैं।)

साक्षरता एक आवश्यक शर्त

सी. जयंती

सदियों से होती आ रही बालिकाओं की उपेक्षा और उनके प्रति भेदभाव एक दिन में तो बदला नहीं जा सकता लेकिन सभ्य समाज के सहयोग से देशभर में उनकी शिक्षा का स्तर ऊंचा उठाने की योजनाएं यदि सावधानीपूर्वक बनाई जाएं तो स्त्रियों का सशक्तिकरण अवश्य संभव है।

महिला सशक्तिकरण का प्रश्न दुनिया भर के नेताओं और विवेकशील व्यक्तियों के लिए कई दशकों से चिंता का विषय रहा है। चीन के बीजिंग शहर में सितंबर 1995 में हुए चौथे विश्व महिला सम्मेलन में पुरुष के मुकाबले स्त्रियों को अवसरों और दर्जे की समानता देने की जरूरत पर जोर दिया गया था। स्त्रियों को स्वावलंबी बनाने और लक्ष्यप्राप्ति तथा अपने मनपसंद क्षेत्र में सफलता प्राप्ति के लिए उनमें आत्मविश्वास उत्पन्न करने में शिक्षा का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है।

बीजिंग घोषणा में इस बात की पुष्टि की गई कि भारत सहित अन्य सभी उपस्थित देशों की सरकारें विश्व स्तर पर 'स्त्री-पुरुष समानाधिकारों तथा संयुक्त राष्ट्र चार्टर में वर्णित सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणा तथा अन्य अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार दस्तावेजों, विशेषकर महिलाओं के विरुद्ध हर प्रकार के भेदभाव की समाप्ति संबंधी संधि और बाल अधिकार संधि तथा स्त्रियों के खिलाफ हिंसा मिटाने की घोषणा और विकास के अधिकार की घोषणा में निर्दिष्ट अन्य उद्देश्यों व सिद्धांतों के प्रति वचनबद्ध रहेंगी।

बीजिंग शिखर सम्मेलन में इस बात पर जोर दिया गया कि इसमें भाग लेने वाली सरकारों द्वारा मंजूर 'कार्यमंच' के क्रियान्वयन के लिए उनकी तथा अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की प्रतिबद्धता जरूरी है। इस सम्मेलन में कार्रवाई के लिए की गई राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं के जरिए सरकारों तथा अंतर्राष्ट्रीय बिरादरी ने स्त्रियों के सशक्तिकरण और उन्नति के लिए प्राथमिकता के आधार पर कदम उठाने की जरूरत को स्वीकार किया। यह महसूस किया गया कि एक बड़ा क्षेत्र जिसमें कार्रवाई की जरूरत है, वह है लड़कियों और औरतों की बुनियादी शिक्षा, जीवनपर्यंत शिक्षा, साक्षरता व प्रशिक्षण तथा प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाओं के जरिए निरंतर आर्थिक उन्नति के साथ-साथ जन-केंद्रित निरंतर विकास को बढ़ावा देना।

इसलिए विश्व-स्तर पर स्वीकार किया गया है कि शिक्षा से सशक्तिकरण होता है तथा जीवनपर्यंत व निरंतर शिक्षा मानव जीवन के स्तर को उन्नत करती है। सदियों से स्त्रियों के प्रति भेदभाव किया जाता रहा है और उन्हें शिक्षा, उन्नति, विकास और निर्णयाधिकार से वंचित रखा गया है। भारत जैसे पारंपरिक समाजों के बारे में तो यह बात विशेष रूप से सच है, जहां 80 प्रतिशत जनसंख्या अभी भी गांवों में रहती है।

पारंपरिक रूप से औरत की भूमिका घर संभालने और बच्चों का पालन-पोषण करने तक सीमित है। मध्य प्रदेश में ओरछा और खजुराहो की हाल की यात्रा में मैंने देखा कि आस-पास के गांवों में भीषण गरीबी तो नहीं थी, लेकिन स्त्रियां आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से आदमियों पर निर्भर रहने पर मजबूर थीं। एक बुजुर्ग महिला ने अपनी बहू से मेरा परिचय कराया जिसकी आयु मुश्किल से 14 वर्ष होगी। उसका चेहरा घूंघट में छिपा था। जब मैंने पूछा कि बहू पर्दा कब हटाएगी तो जवाब मिला कि पर्दा तो जीवनभर रहेगा और परिवार के आदमियों के सामने तो घूंघट रखना ही पड़ेगा। एक अन्य व्यक्ति हैं अवस्थी जी, जो ओरछा में मध्य प्रदेश पर्यटन विकास में काम करते हैं। उन्होंने बताया कि उनकी बेटी 15 साल की है और वह इंटरमीडिएट तक पढ़ेगी। उनका

तमाम पारिवारिक विरोध के बावजूद ग्रामीण महिलाएं पढ़ने-लिखने की इच्छा रखती हैं।

विवाह 18 वर्ष की आयु में हुआ था और तब उनकी पत्नी की उम्र 15 साल थी। वे बताते हैं मुझ पर गांव के बड़े-बूढ़ों का लगातार दबाव पड़ रहा है कि मैं तत्काल अपनी बेटी का ब्याह कर दूं, लेकिन मैं समझता हूं कि शिक्षा से मेरी बेटी को फायदा पहुंचेगा; वह आत्मनिर्भर बनेगी। अगर विवाह के बाद भी पढ़ना चाहेगी तो मैं उसका खर्च उठाऊंगा। शहरी और ग्रामीण संस्कृतियों के बीच रहे तथा विभिन्न देशों के लोगों के संपर्क में आने तथा खुद भी थोड़ा बहुत पढ़े-लिखे होने के कारण अवस्थी जी मानते हैं कि शिक्षा व्यक्ति के जीवन को बदल सकती है। इन विरोधाभासी मामलों से हम देख सकते हैं कि शिक्षा तथा विश्व संपर्क से बेटी के जीवन के प्रति भी व्यक्ति के दृष्टिकोण में बदलाव आ सकता है।

आक्सफैम इंटरनेशनल द्वारा प्रकाशित 'एजूकेशन नाऊ — ब्रेक दि साइकिल आफ पावर्टी' (आज शिक्षा-गरीबी के दुश्चक्र को तोड़े) के बारे में एक रिपोर्ट में गरीबी और शिक्षा की कमी के बीच संबंध और स्त्रियों के जीवन पर शिक्षा के प्रभावों के बारे में एक प्रभावपूर्ण विश्लेषण दिया गया है। रिपोर्ट में निरक्षरता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि 20वीं सदी के अंत में मानवता के लिए यह सबसे बड़ा अभिशाप था। इसने करोड़ों वयस्कों को वंचित, असुरक्षित और कंगाल कर डाला। इसके शिकार अधिकांशत: गरीब हैं। बड़ी संख्या लड़कियों और स्त्रियों की है। यह अभिशाप कोई बीमारी नहीं बल्कि व्यापक निरक्षरता है जो शिक्षा के अवसरों से वंचित रखे जाने के कारण उत्पन्न हुई है।

अंतर्राष्ट्रीय वित्त बाजार में गड़बड़ियों के विपरीत विकासशील देशों में शिक्षा के संकट पर मीडिया का ध्यान आकर्षित नहीं होता और न ही विश्व के शक्तिशाली देशों में कोई कदम उठाने की इच्छा जगती है। दूसरी तरफ सूखा, बाढ़ या नागरिक विद्रोह, गरीबी, अधिकारहीनता और निरक्षरता से उत्पन्न खराब स्वास्थ्य से समाज में फैलती त्रासदी आसानी से कैमरे में कैद करके अंतर्राष्ट्रीय जनमत के सामने पेश कर दी जाती है। आज प्राथमिक स्कूल जाने वाले 12.5 करोड़ बच्चे स्कूल छोड़ चुके हैं। इनमें से अधिकांश लड़कियां हैं। उगांडा की एक महिला इस रिपोर्ट में कहती हैं: ''शिक्षित व्यक्ति के सामने अधिक अवसर होंगे। अगर मेरी बेटी पढ़-लिख सकती है, तो उसका जीवन बेहतर बनेगा। वह अधिक खुश होगी और दूसरों पर कम निर्भर होगी।'' इसलिए हर कीमत पर निरक्षरता दूर करना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि इससे स्त्रियों को अंतत: अपनी जिंदगी में कुछ कह पाने का अधिकार मिल सकेगा। अनपढ़ महिला का तो इस बात में भी दखल नहीं होता कि उसके कितने बच्चे हों या वह उन्हें स्कूल भेज सकती है या नहीं। भारत जैसे पितृसत्तात्मक समाज में लड़कियों की शिक्षा पर खर्च बेकार माना जाता है क्योंकि एक दिन उसे घर छोड़कर पति के घर जाना है। इसी सोच को आज बदलना होगा विशेषकर ग्रामीण इलाकों में। भारत के शहरी इलाकों में जीवन-निर्वाह की भारी लागत की वजह से इस सोच में काफी परिवर्तन आया है। घर खर्च चलाने और बच्चों की जरूरतें पूरी करने के लिए पति-पत्नी दोनों को काम करना पड़ता है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा जारी 'महिला वर्ष 2000 की चुनौतियां' रिपोर्ट में कहा गया है कि जिंदा रहने के लिए औरतों पर बुरी तरह निर्भर ग्रामीण समाज उन्हें शिक्षित करने का विरोध करता है। उदाहरण के लिए अफगानिस्तान के ग्रामीण इलाकों में 93.8 प्रतिशत स्त्रियां निरक्षर हैं, जबकि शहरों में अनपढ़ औरतों का प्रतिशत 56.4 है। बेनिन में 92.1 प्रतिशत ग्रामीण

महिलाओं की तुलना में शहर की केवल 59 प्रतिशत स्त्रियां निरक्षर हैं। ग्रामीण औरतों के बच्चे अधिक होते हैं, वे अधिक गरीब होती हैं, और जीवन संघर्ष में उनके पास प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों के लिए या तो समय नहीं होता और होता भी है तो कम होता है। इसके अलावा उनमें इसके लिए ताकत भी नहीं होती। वर्ष 1994 में प्रकाशित एक अध्ययन के अनुसार भारत में 60 प्रतिशत लड़कियां पढ़ाई जारी रख सकीं, जबकि पढ़ाई जारी रखने वाले लड़कों का प्रतिशत 35 था। जीवन संबंधी जरूरतों के अलावा भी ग्रामीण औरतों को शिक्षा जारी रखने में परिवार का विरोध सहना पड़ता है। शिक्षित महिला अपने पति के लिए खतरा बन सकती है तथा परिवार की यथास्थिति को गड़बड़ा सकती है। इसलिए अगर यह देश प्रगति करना चाहता है और पिछड़ेपन की रूढ़ियों से लड़ना चाहता है, तो इस सोच को बदलना होगा, उस पर जीत पानी होगी।

भारत को दक्षिण कोरिया, मलेशिया और सिंगापुर जैसे देशों के उदाहरणों का अनुकरण करना होगा जिन्होंने अपनी जनता की शिक्षा पर काफी संसाधन खर्च किए और तत्पश्चात तेजी से उन्नति की। इन देशों ने फिर पीछे मुड़कर नहीं देखा। देश के तीव्र विकास के लिए भारत को ये दूरदृष्टिपूर्ण दृष्टिकोण विकसित करने होंगे।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से भारत ने अपने निवासियों को शिक्षा की गारंटी देने के लिए कई पहलें की हैं। हालांकि प्रगति हुई है, लेकिन कभी-कभी जनसंख्या का बड़ा आकार बाधा बन जाता है। दक्षिणी राज्यों की जनसंख्या उत्तरी राज्यों की अपेक्षा कम है, इसलिए वे साक्षरता लक्ष्यों को प्राप्त करने में अधिक कामयाब रहे हैं। सरकारी आंकड़ों के अनुसार 1951 की तुलना में महिला साक्षरता में पांच गुना वृद्धि हुई है। अब यह दर पुरुषों की लगभग 64 प्रतिशत की तुलना में 39.29 प्रतिशत है। हाल ही में भारत सरकार द्वारा प्रकाशित 'महिला विरोधी हर तरह के भेदभाव की समाप्ति' के बारे में संधि की कंट्री रिपोर्ट में कहा गया है कि देश के भीतर अभी व्यापक अंतर मौजूद है। संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 1979 में पारित और अन्य देशों के साथ-साथ भारत द्वारा पुष्ट इस संधि को सामान्यत: 'महिलाओं के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय अधिकार विधेयक' कहा जाता है। रिपोर्ट में कहा गया है कि 'केरल में पूर्ण साक्षरता है, जबकि राजस्थान में महिला साक्षरता दर केवल 20.8 प्रतिशत है।' राज्यों के बीच के इन अंतरों को कम करना है ताकि लिंग-भेद और शिक्षा संबंधी विषमताएं घट सकें।

1992 में संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) और कार्ययोजना (1992) में सर्वसुलभ प्रारंभिक शिक्षा, संपूर्ण साक्षरता और लिंग-भेद समाप्ति के प्रति वचनबद्धता झलकती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति का मूल जनादेश स्त्रियों की समानता के बारे में जागरुकता उत्पन्न करना है। यह केवल शैक्षणिक उपलब्धियों में लिंग-भेद अंतर की समाप्ति तक सीमित नहीं है; यह तो शिक्षा प्रक्रिया और विषयवस्तु को ही बदल देना चाहती है, ताकि समाज की सोच में बदलाव आ सके। सशक्तिकरण की नीति के पीछे यही धारणा है जो हमारी राष्ट्रीय शिक्षा नीति का केंद्रबिंदु है। पहली बार इससे यह संदेश भेजा गया है कि सभी तरह की शिक्षा तक स्त्रियों के वास्तविक सशक्तिकरण की महती जिम्मेदारी भी उठानी पड़ेगी। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान उठाए गए कदमों के बावजूद हमें अभी लंबा रास्ता तय करना है, क्योंकि सदियों के शोषण को मात्र 50 वर्ष के सुधारों से समाप्त नहीं किया जा सकता। लेकिन शुरुआत हो चुकी है तथा असली मसला यह है कि हमारे जैसे पारंपरिक समाज में आदमी स्त्रियों के विरुद्ध भेदभाव के प्रति संवेदनशील बनें और स्त्रियों की प्रगति में हाथ बंटाने के लिए तैयार रहें।

भारत सरकार ने समन्वित बाल विकास योजना जैसे कई कदम उठाए हैं जिनका आठवीं योजना के दौरान काफी विस्तार हुआ है। महिलाओं के प्रति सभी तरह के भेदभाव समाप्त करने के बारे में संधि रिपोर्ट में उल्लेख है कि एक करोड़ 39 लाख बच्चों से शुरू करके (जिनमें 86 लाख बच्चे 3-6 वर्ष के आयु वर्ग में थे) इस कार्यक्रम को वर्ष 1999-2000 के दौरान सर्वसुलभ बनाया गया जिसके परिणामस्वरूप देश में 5614 परियोजनाओं के दायरे में 4 करोड़ 37 लाख बच्चे आ गए हैं। इस योजना की लिंगवार निगरानी से पता चलता है कि स्कूल-पूर्व आयु वर्ग के एक करोड़ 5 लाख बच्चे इसके दायरे में आते हैं जिनमें 49 प्रतिशत लड़कियां हैं।

सरकार का संपूर्ण साक्षरता अभियान 356 जिलों में चल रहा है। इस कार्यक्रम में शामिल वयस्कों में 62 प्रतिशत औरतें हैं। सरकारी आंकड़ों के अनुसार जनवरी, 1995 तक कुल पंजीकृत 7 करोड़ 40 लाख व्यक्तियों में 4 करोड़, 40 लाख औरतें थीं।

सरकार के कुछ और कार्यक्रम भी हैं। उदाहरणार्थ महिला समाख्या कार्यक्रम, जो चार राज्यों—उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, गुजरात और आंध्र प्रदेश में चल रहा है तथा जिसका उद्देश्य 'विवेकपूर्ण विकल्पों के लिए ज्ञान व सूचना पाने के उद्देश्य से स्त्रियों के लिए उचित वातावरण' बनाना है ताकि स्त्रियां अपने पारंपरिक स्वरूप से बाहर निकल सकें। सात राज्यों में (असम, हरियाणा, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल और मध्य प्रदेश) चलाए जा रहे विकेंद्रित प्रारंभिक

शिक्षा नियोजन का उद्देश्य सर्वसुलभ प्रारंभिक शिक्षा पर स्त्रियों को ध्यान में रखकर विशेष बल देना है। राजस्थान में सर्वसुलभ प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम 'लोकजुंबिश' में स्त्रियों को केंद्र बनाने, आम सहमति बनाने और भागीदारी पर जोर दिया जाता है।

राजस्थान में 'शिक्षाकर्मी' परियोजना का उद्देश्य राज्य के पिछड़े और दूरदराज के गांवों में प्राथमिक शिक्षा का विस्तार करना है। इस काम को स्थानीय निवासियों के दल द्वारा किया जाएगा जिन्हें 'शिक्षाकर्मी' कहा जाएगा और जिनमें कम से कम दस प्रतिशत स्त्रियां होंगी। कई राज्य-विशिष्ट परियोजनाएं भी हैं, जैसे कि उत्तर प्रदेश की बुनियादी शिक्षा परियोजना, आंध्र प्रदेश की प्राथमिक शिक्षा परियोजना और बिहार की शिक्षा परियोजना। इनका उद्देश्य विभिन्न राज्यों में लड़कियों और लड़कों के शिक्षा-स्तर को उन्नत करना है। तमिलनाडु की 'दोपहर भोजन योजना' ने राज्य में लड़के-लड़कियों का साक्षरता-स्तर उन्नत बनाने में काफी हद तक मदद की है।

भारत में यह अहसास किया जा चुका है कि बिना शिक्षा के स्त्रियों का सशक्तिकरण संभव नहीं। दक्षिणी राज्यों ने काफी हद तक इसे अपनाया है जबकि उत्तरी राज्य अभी इस मामले में पीछे हैं। लेकिन देशभर में बच्चियों का शिक्षा-स्तर ऊंचा उठाने के लिए सरकार की तरफ से एक जागरूक प्रयास किया जा रहा है। एक कहावत है कि अगर लड़की को पढ़ाओगे, तो एक परिवार शिक्षित होगा।

लड़कियों के प्रति उपेक्षा और भेदभाव के वर्षों को एक दिन में ही नहीं बदला जा सकता। लेकिन नागरिक समाज के सहयोग से सरकार की देशभर में शिक्षा-स्तर को ऊंचा उठाने के लिए बड़ी सावधानीपूर्वक बनाई गई योजनाओं से स्त्रियों का सशक्तिकरण अवश्य हो सकेगा। इससे उनमें आत्म-जाग्रति उत्पन्न होगी और वे घर व बाहर निर्णय प्रक्रिया में भाग ले सकेंगी। इससे उनके कौशल का विकास भी होगा और वे आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनेंगी। तब वे परिवार खर्च में भी हाथ बंटा सकेंगी, बच्चों के लिए आदर्श बन सकेंगी। स्त्रियों के सशक्तिकरण के लिए जरूरी है कि पुरुष भी उनसे भागीदारी व सहयोग करें, क्योंकि शिक्षित माताओं, पत्नियों, पुत्रियों और बहनों से उन्हें भी फायदा पहुंचता है। हम इस मामले में दुनिया से पीछे हैं। हमें उनके बराबर आना होगा। यह उस पारंपरिक सोच को बदलने से ही संभव है जो स्त्रियों को समाज में द्वितीयक दर्जा प्रदान करती है। ❑

(सुश्री सी. जयंती 'एजुकेशन टाइम्स', नई दिल्ली की संपादक हैं।)

ALLAHABAD'S *Best Known Institute announces*

IAS / PCS-2002

(Pre, Main and Pre-cum-Main)

हिन्दी माध्यम में अध्ययन

G.S., ESSAY, HISTORY, GEOGRAPHY, PUB. ADMN., HINDI LITT., PHILOSOPHY, POL. SCIENCE, SOCIOLOGY, ECONOMICS, LAW, ANTHRO, MATHS, PHYCHO, BOTANY AND ZOOLOGY. PCS (J) & APO कोर्स उपलब्ध

"POSITIVE (+ve) RESULT" की गारन्टी

Batch Starting Every Month | Hostel Available (Boys & Girls)

For details contact personally or for information bulletien send Rs. 50/- By D.D./MO to

CAREER COACHING

13, Kamla Nehru Road, Allahabad. Tel # 0532-600428, 608582, 608595

on Telephone - Ask for RAJESH SHUKLA, HOD, CIVIL SERVICES CELL

मगर करना / करवाना होगा - - -

(i) 1 वर्ष तक हमारे साथ अथक परिश्रम

(ii) प्रति दिन 4-5 घन्टे (5-6 माह तक) Class Coaching

(iii) प्रति दिन हमारे Guidance में घर / हास्टल में 5-7 घन्टे अध्ययन, मनन, लेखन तथा वाचन

(iv) स्तरीय एवं बहुआयामी (Pre & Mains के लिए अलग - अलग) नोट्स निर्माण

(आपकी अपनी भाषा-शैली में, हमारे सहयोग से)

(v) साप्ताहिक नोट्स Correction (सिध्द तथा ख्यातिलब्ध व्यक्तित्वों द्वारा)

(vi) धैर्य एवं अनुशासन का पूर्ण निष्ठा से पालन

आर्थिक अधिकारिता का महत्व

रत्ना एम. सुदर्शन

महिलाएं महत्वपूर्ण आर्थिक एजेंट होती हैं। अनुसंधान के क्षेत्र में पहला कदम है उनके योगदान को दृष्टिगोचर बनाना। अगला कदम है उनके कार्य, उनकी आय और प्रगति के अवसरों की गुणवत्ता में सुधार लाना। इसके लिए महिला कल्याण की तरफ अधिक ध्यान देना जरूरी है। साथ ही यह भी महत्वपूर्ण है कि स्त्री-पुरुषों के बारे में समाज के नजरिए में परिवर्तन लाया जाए।

स्त्री-पुरुष अधिकारों में समानता और विकास के दृष्टिकोण के कारण भारत और अन्य देशों में पिछले दशक के दौरान आर्थिक अधिकारिता का महत्व बढ़ गया है। संभवत: ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि यह दृष्टिकोण 'बाजार शक्तियों के अनुकूल' और वर्तमान आर्थिक नीतियों के अनुरूप है। इसके दो पहलू हैं: आय या आजीविका। दूसरा, क्या महिलाओं का इस आय या आजीविका पर प्रभावी नियंत्रण है। यह दृष्टिकोण निर्धनतम महिलाओं सहित अनेक लोगों के जीवन में परिवर्तन का विशिष्ट अवसर प्रदान करता है। आर्थिक अधिकारिता के विभिन्न दृष्टिकोणों का सार इस परिभाषा में निहित है:

'आर्थिक परिवर्तन/भौतिक लाभ और मोल-भाव की बढ़ी हुई शक्ति और/या संरचनात्मक परिवर्तन जो महिलाओं को निरन्तर और नियमित आधार पर आर्थिक लाभ सुनिश्चित करने की योग्यता दिलाने में समर्थ हों।'

महिलाओं की आर्थिक भूमिका पुरुषों से भिन्न होती है। इसके परिणामस्वरूप हम पाते हैं उनकी

(क) आर्थिक गतिविधियों में कम भागीदारी।

(ख) प्राथमिक क्षेत्रों और कुछ उद्योगों एवं पेशों में अधिक जमाव, और

(ग) अकुशल या अप्रशिक्षित और सीमान्त कार्यों में अधिक जमाव।

दूसरे शब्दों में, देश में उपलब्ध विभिन्न रोजगार अथवा कार्यों का वितरण स्त्री-पुरुषों के बीच एक समान नहीं है और उनकी आय/वेतन में भी अंतर विद्यमान है।

आर्थिक एजेंट के रूप में बहुसंख्यक महिलाएं (89 प्रतिशत पुरुषों की तुलना में 95 प्रतिशत) असंगठित क्षेत्र में रोजगार में लगी हैं। बहुसंख्यक महिला कामगार ग्रामीण क्षेत्रों में पाई जाती हैं (75 प्रतिशत पुरुषों की तुलना में 90 प्रतिशत) और केवल 28.58 प्रतिशत महिलाएं (71.43 प्रतिशत पुरुषों की तुलना में) श्रमिक बल में हैं (वर्ष 1991 की जनगणना)। श्रमिक बल में महिलाओं की भागीदारी दर 1993-94 में ग्रामीण क्षेत्रों में 32.8 प्रतिशत और शहरी क्षेत्रों में 15.5 प्रतिशत आंकी गई। पुरुषों के मामले में यह अंतर काफी कम है: ग्रामीण क्षेत्रों में 55.3 प्रतिशत और शहरी क्षेत्रों में 52.1 प्रतिशत (राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण सीएसओ 1998 में उद्धृत)। महिलाएं प्राथमिक क्षेत्र और कुछ उद्योगों में बहुत अधिक संख्या में पाई जाती हैं (63 प्रतिशत पुरुषों की तुलना में 81 प्रतिशत)। ऐसे उद्योग जिनमें पुरुषों की तुलना में महिलाएं अधिक हैं, वे हैं—मूंगफली की छटाई, घरेलू काम, बीड़ी निर्माण, नारियल जटा की कताई, बिनाई और सफाई (फिनीशिंग), और नर्स, आया, सेविका और घरेलू नौकरानी का काम।

अब यह बात भी बड़े पैमाने पर स्वीकार की जाती है कि महिलाओं द्वारा किए गए काम सरकारी दस्तावेजों में स्थान नहीं पाते यद्यपि अनेक महिलाएं अवैज्ञानिक कार्यकर्ता के रूप में अथवा गृहिणी के रूप में उल्लेखनीय आर्थिक योगदान करती हैं। इसके अलावा संतानोत्पत्ति और बच्चों की देखभाल

संबंधी महिलाओं के अवैतनिक कार्यों (इनमें बीमारों और वृद्धों की देखभाल भी शामिल है) का किस प्रकार मूल्यांकन किया जाए, यह एक समस्या बनी हुई है।

यद्यपि महिलाओं के साक्षरता-स्तर में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है और अब अधिक महिलाएं निर्णायक-स्तर और प्रबंधकों के पद पर हैं, वृहद् परिप्रेक्ष्य में महिलाओं की रोजगार स्थिति में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। इसके अनेक कारण हैं। एक कारण है शिक्षा और कुशलता की बड़े और व्यापक पैमाने पर व्यवस्था की कमी। वर्ष 1993-94 में ग्रामीण क्षेत्रों में 79 प्रतिशत महिला श्रमिक अशिक्षित थीं जबकि 43.7 प्रतिशत पुरुष अशिक्षित थे। शहरी क्षेत्रों में इनका अनुपात 44.5 प्रतिशत और 17.9 प्रतिशत था। शहरी क्षेत्रों में अशिक्षित महिलाओं का अनुपात तो कम है किन्तु स्त्री-पुरुषों के बीच की खाई अधिक है। महिलाओं के रोजगार ढांचे में धीमे परिवर्तन का दूसरा कारण उन पर लगे अनेक सामाजिक और सांस्कृतिक बंधन हैं। इसके अलावा महिलाओं की संतानोत्पत्ति संबंधी जिम्मेदारियां भी इसमें बाधक हैं।

सरकारी हस्तक्षेप

महिला रोजगार की इन विशेषताओं ने उनकी आर्थिक भागीदारी बढ़ाने और उन्हें आर्थिक अधिकारिता प्रदान करने के सरकारी कार्यक्रमों को प्रभावित किया है। सरकारी हस्तक्षेप में यह प्रयास किया जाता है कि महिलाओं के रोजगार में प्रत्यक्ष वृद्धि हो, जैसे कि समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम द्वारा किया गया। वर्ष 1997-98 में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम और 'ट्रायसम' में महिलाओं का प्रतिशत हिस्सा अनुमानत: 35.75 प्रतिशत था (जबकि वह 1990-91 में 32.29 प्रतिशत और 1985-86 में मात्र 11.52 प्रतिशत था। (सीएसओ 1998)। महिलाओं की कुशलता बढ़ाने की प्रशिक्षण योजनाएं और उन्हें बिक्री एवं ऋण सुविधाएं प्रदान करने के सामूहिक कार्यक्रम भी शुरू किए गए हैं जैसे कि राष्ट्रीय महिला कोष और स्वशक्ति कार्यक्रम, आदि।

आर्थिक अधिकारिता की जो परिभाषा पहले दी गई है उसमें इस बात पर जोर दिया गया है कि यद्यपि अधिकारिता के लिए रोजगार आवश्यक है तथापि, यह एकमात्र आवश्यकता नहीं है। साथ ही यह भी महत्वपूर्ण है कि ऐसे संरचनात्मक परिवर्तन हों जो महिलाओं की मोल-तोल की शक्ति और स्वायत्तता को बढ़ाए। इसके लिए कार्यक्रम संबंधी परिवर्तनों के साथ कुछ कर्मठता भी जरूरी है। सरकारी कार्यक्रम अधिक से अधिक सार्थक हो सकते हैं। आर्थिक अधिकारिता दृष्टिकोण की सफलताओं और सीमाओं को समझने के लिए 'सेल्फ एम्पलायड वीमन्स एसोसिएशन' (सेवा) के अनुभव लाभप्रद हो सकते हैं। इस तरह के आंदोलनों को एक अनुकूल नीतिगत ढांचे से बहुत सहायता मिलती है। तथापि, ये उपलब्धियां बहुत कुछ घर में और अन्यत्र महिलाओं की बढ़ी हुई मोल-तोल शक्ति पर निर्भर करती हैं। इसके दो अंग हैं : काम/रोजगार की व्यवस्था और संगठन।

आर्थिक अधिकारिता दृष्टिकोण की सफलताओं और सीमाओं को समझने के लिए 'सेल्फ एम्पलायड वीमन्स एसोसिएशन' (सेवा) के अनुभव लाभप्रद हो सकते हैं। इस तरह के आंदोलनों को एक अनुकूल नीतिगत ढांचे से बहुत सहायता मिलती है। तथापि, ये उपलब्धियां बहुत कुछ घर में और अन्यत्र महिलाओं की बढ़ी हुई मोल-तोल शक्ति पर निर्भर करती हैं।

सेवा की व्याख्या

'सेवा' आंदोलन (सेल्फ एम्पलायड वीमन्स एसोसिएशन) सहकारी आंदोलन, श्रमिक आंदोलन और महिला आंदोलन की तर्ज पर कार्य कर रहा है। यद्यपि कई दशकों के समर्पित कार्य, विचारों और अनुभवों को कुछ वाक्यों में प्रकट करना जरा कठिन है फिर भी इसके दृष्टिकोण के कुछ पहलुओं को समझाया जा सकता है। पहला, यह कहना सही होगा कि इस दृष्टिकोण की शुरुआत श्रम आंदोलन से हुई। परम्परागत धारा की मजदूर यूनियन गतिविधियों में असंगठित क्षेत्र की गरीब कामगार महिलाएं शामिल नहीं थीं। जब 'सेवा' ने अपना काम शुरू किया तो उसे शीघ्र ही यह पता चल गया कि महिला कामगारों की बड़ी संख्या ऐसी है जिन्हें आंकड़ों, कानून और नीति संबंधी हस्तक्षेप में शामिल नहीं किया जाता और इसलिए बाजार व्यवस्था में रोजगार देते समय उनका अत्यधिक शोषण होता है। इसलिए गरीब कामगार महिलाओं को संगठित करने का मतलब था 'मालिकों' से टकराव से भी कुछ अधिक। वास्तव में असंगठित क्षेत्र में काम की जो स्थिति है, उसे देखते हुए अधिकांश ऐसे कामगारों के कोई मालिक नहीं थे। इसका अर्थ था कानून, सरकारी आंकड़े एकत्र करने वाली संस्थाओं और सरकारी नीति-निर्माताओं की समझ में बदलाव लाने का प्रयास करना। दूसरे, कामगारों को अधिकार संपन्न बनाने के लिए सेवा ने जो रणनीति अपनाई वह है केवल 'सेवा' नहीं बल्कि सदस्यता-

आधारित अन्य वर्गों का विकास और विभिन्न स्थानों एवं विभिन्न उद्यमों में सहकारिताओं का विकास। इसी के साथ यह प्रयास किए जा रहे हैं कि कामगार सामूहिक मोल-भाव कर सकें जिससे उनको अधिक सुरक्षा मिले। यह बात आमतौर पर स्वीकार की जाती है कि कामगारों की हैसियत या क्रिया विधि नहीं बदली जा सकती लेकिन असंगठित क्षेत्र को संगठित क्षेत्र के कुछ लाभ उपलब्ध कराए जा सकते हैं (न्यूनतम मजदूरी, न्यूनतम सामाजिक सुरक्षा)। तीसरे, क्योंकि 'सेवा' की सदस्य गरीब कामगार महिलाएं हैं, उसे इन औरतों को संगठित करने में अनेक तरह के लिंग भेदभाव और महिलाओं की संतानोत्पत्ति भूमिकाओं और जिम्मेदारियों के संभावित संघर्षों का सामना करना पड़ता है। 'सेवा' मुख्य रूप से महिलाओं को कामगारों के रूप में अधिकारसंपन्न बनाना चाहती है। उनका अनुभव है कि इससे कालांतर में घर में महिला की मोल-भाव की स्थिति में सुधार आता है।

बागवानी का काम करती कुछ महिलाएं

'सेवा' की रणनीति के निम्नलिखित चरण हैं:

1. गरीब असंगठित महिला कामगारों की पहचान, मुख्य रूप से घरों में फेरी लगाने वाली और विभिन्न व्यवसायों में काम करने वाली स्त्रियां।
2. इन वर्गों को संगठित कर इन महिलाओं को पहचान प्रदान करना।
3. इन वर्गों को वाणी प्रदान करना ताकि वे अधिकारों के लिए मोलभाव करने में सक्षम हो सकें।
4. इन वर्गों को प्रत्यक्ष रूप से आवश्यक सामग्री और बाजार उपलब्ध कराना अथवा उसकी सुविधा प्रदान करना।

दृष्टिकोण की सीमा

आर्थिक अधिकारिता वेतन संबंधी निर्धनता से निपटने का प्रयास है। गरीबी और विकास के बीच का संबंध कार्य के जरिए खोजा जाता है। यह भी सच है कि कुछ मामलों में पारिस्थितिक गरीबी अधिक प्रासंगिक विचार है। इसे 'मानव समाज के अस्तित्व और विकास के लिए आवश्यक प्राकृतिक संसाधनों की कमी' भी कहा जाता है और इसका समाधान यह स्वीकार करने में है कि—

'स्वस्थ या लाभदायक भूमि और पारिस्थितिक व्यवस्था, जब उसका उपयोग पोषण के लिए किया जाए जैसा कि युगों से होता आया है एक स्वस्थ और गरिमापूर्ण जीवन के लिए भरपूर सम्पदा उपलब्ध करा सकती है' (अग्रवाल 1998)।

उदाहरण के लिए कुछ वर्ष पूर्व कुमाऊ में खनिजों की खुदाई के बारे में किए गए एक अध्ययन से पता चला कि यद्यपि उससे परिवार की नकद आमदनी में वृद्धि हुई तथापि उसकी पानी, ईंधन-चारे की उपलब्धता कम हो गई। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि रुपये की आय को सदैव इस तरह के संसाधनों में बदलना संभव नहीं होता। इस अध्ययन से यह भी पता चला कि स्त्री-पुरुषों की भूमिका के अंतर और उसके अनुरूप जीवन अंतर को देखते हुए जहां पुरुष आय की गरीबी के प्रति संवेदनशील थे, महिलाएं पारिस्थितिक गरीबी के संबंध में अधिक चिन्तित थीं। यानी भौतिक सुख-समृद्धि को लेकर स्त्री-पुरुष के नजरिए में काफी अंतर है। इस तरह काम और

आय की अपनी सीमाएं हैं और इस बात की आवश्यकता है कि प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता पर अलग से विचार किया जाए, न कि किसी उत्पादक गतिविधि के निवेश के रूप में।

इसी प्रकार महिलाओं द्वारा किए जा रहे कार्यों और गतिविधियों का आकलन तब तक कठिन है जब तक उसके लिए विभिन्न मापों और विश्लेषणों का इस्तेमाल न किया जाए। उदाहरण के लिए कमाई की जगह देखभाल या सेवा सुश्रूषा में दिया गया समय। 'सेवा' की रणनीति में वैतनिक और अवैतनिक कार्य के घनिष्ठ संबंधों को स्वीकार किया गया है। यह संभव है कि घर के भीतर उत्तरदायित्वों के वर्तमान वितरण से होने वाले संघर्षों को उसने कम करके आंका हो। देखभाल अर्थव्यवस्था और उत्पादक अर्थव्यवस्था के पारस्परिक संबंध पर अधिक ध्यानपूर्वक विचार करना आवश्यक है।

बीड़ी मजूदरों के हालात के मद्देनजर इसे समझा जा सकता है। इनमें से अधिकांश महिला मजदूर संगठित और अधिकार सम्पन्न हो चुके हैं। मजदूरों के रूप में उनकी नई पहचान उन्हें बुनियादी सुरक्षा दिलाने में काफी कारगर सिद्ध हुई है लेकिन यह महिलाओं के अंतर और उनको अलग-थलग या एकान्त में रखने के प्रचलित मानकों को प्रभावित करने में कम सफल हुई है। इस प्रकार घरों में बीड़ी बनाने के काम में महिलाएं बहुत अधिक संख्या में लगी हैं। पुरुष विभिन्न औद्योगिक वर्गों में समान रूप से विभाजित हैं—46 प्रतिशत बीड़ी निर्माण में, 36 प्रतिशत पान, बीड़ी, सिगरेट की फुटकर बिक्री में और 8 प्रतिशत कृषि (बागान खेती) में। इसके विपरीत 91 प्रतिशत महिलाएं केवल बीड़ी बनाने के काम में लगी हैं। समूचे भारत के बारे में विचार किया जाए तो 10 प्रतिशत बीड़ी मजदूर औद्योगिक प्रतिष्ठानों में पाए जाते हैं और शेष 90 प्रतिशत घरों में बीड़ी बनाते हैं। औद्योगिक प्रतिष्ठानों पर पाए जाने वाले मजदूरों में आधी महिलाएं हैं लेकिन घरों में बीड़ी बनाने वालों में 68 प्रतिशत महिलाएं हैं। इस धंधे से औरतें दो कारणों से बंधी हैं। पहला, उन्हें बीड़ी बनाने के अलावा कोई और काम करना नहीं आता। शिक्षा का निम्न स्तर, कमजोर स्वास्थ्य, ऋण सुविधा का अभाव, भूमि या जीविकोपार्जन के अन्य साधनों की कमी, ये सब मिलकर किसी और व्यवसाय या धंधे में उसका जाना लगभग असंभव बना देते हैं। विकल्प के अभाव में अगली पीढ़ी को भी यही काम अपनाना पड़ता है। बच्चे, विशेष रूप से लड़कियां बहुत कम उम्र में बीड़ी बनाने के काम में लग जाती हैं। दूसरा कारण धार्मिक आधार पर औरतों पर लगे प्रतिबंध हैं। उदाहरण के लिए मुसलमान औरतों पर लगाए गए सांस्कृतिक बंधनों के कारण उन्हें घर के भीतर रह कर काम करना होता है। जैसी कि इस समय स्थिति है आर्थिक अधिकार प्रदान करने की रणनीति इन बंधनों को समाप्त करने में समर्थ नहीं है।

चिंता का तीसरा कारण है बाजार-आधारित अर्थव्यवस्था के खतरे। इसमें रोजगार का सीधा अर्थ है कि श्रमिक बाजार की गतिविधियों से वाकिफ हो और तदनुरूप अपना उत्पाद और कौशल विकसित करें। हालांकि इसमें कोई बुराई नहीं है पर इस बात का खतरा है कि जिनके पास बाजार-अनुकूल कुशलता नहीं है उन्हें विकास और अधिकारिता की प्रक्रिया से अलग कर दिया जाएगा।

अनुसंधान का योगदान

अनेक क्रियाशील वर्गों जैसे कि 'सेवा' द्वारा आर्थिक अधिकारिता का दृष्टिकोण अपनाया गया है तथा सरकार ने भी अपनी नीति में इसे केन्द्रीय स्थान दिया है। 'आर्थिक अधिकारिता' पर अनुसंधान इन योजनाओं का प्रभाव बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। जहां सरकारी आंकड़े हमें महिलाओं द्वारा किए जा रहे काम, श्रमिक बलों में उनकी भागीदारी की सीमा, उनके द्वारा की गई विशिष्ट गतिविधि और उनकी आय की तस्वीर प्रदान करते हैं, वहीं इस समय उपलब्ध आंकड़ों में काफी कमियां हैं। अभी भी अनेक ऐसे कार्य जो विशेष रूप से घरों में किए जाते हैं, कमतर आंके जाते हैं। एक और बुनियादी समस्या उत्पादक और पुनरुत्पादक कार्यों को समन्वित करने की है। अगर स्त्री-पुरुषों की भूमिका में परिवर्तन नहीं होता तो केवल रोजगार पर जोर देना हानिकारक हो सकता है। एक पारम्परिक परिवेश में जहां यह अपेक्षा की जाती है कि एक महिला घर-गृहस्थी और बच्चों का सभी काम करे, उसकी आर्थिक गतिविधियों के साथ ये काम भी जुड़ जाते हैं लेकिन दिखाई नहीं देते। अगर उसे नियमित वैतनिक काम संभालने के लिए प्रोत्साहित किया जाए या उसके लिए यह संभव बनाया जाए तो एक श्रमिक के रूप में तो उसका काम दिखाई देने लगेगा, लेकिन अगर स्त्री-पुरुष अन्य जिम्मेदारियों को मिलजुल कर पूरा नहीं करते तो औरत पर अत्यधिक दबाव पड़ेगा और उसे बहुत ज्यादा काम करना पड़ेगा। इस कारण महिलाओं को आर्थिक अधिकारिता प्रदान करने के सरकारी या गैर-सरकारी प्रयास वास्तविक समय उपयोग पर आधारित होने चाहिए और रोजगार के अवसरों के साथ बच्चों की देखभाल की सहायक

(शेष पृष्ठ 22 पर)

आर्थिक स्वतंत्रता बनाम सामाजिक स्वतंत्रता

हरजीत अहलूवालिया

शिक्षा और आजादी मनुष्य की मानसिकता को पूरी तरह बदल सकते हैं जैसाकि सफलता की छुटपुट घटनाओं से स्पष्ट है। असली चुनौती है इन उदाहरणों की लाखों-करोड़ों बार पुनरावृत्ति। तभी उन लिंग-भेद समस्याओं का तेजी से समाधान हो सकता है जो महिलाओं को अपने शिकंजे में जकड़े हुए हैं।

स्वाधीनता की अर्द्ध शताब्दी और महिला सशक्तिकरण प्रयासों की एक शताब्दी बीतने के बाद भी वांछित परिणाम हासिल नहीं हो सके हैं। महिलाओं को आर्थिक स्वतंत्रता तभी मिल सकती है, जब उन्हें समग्र सामाजिक परिदृश्य में अधिक भागीदारी प्राप्त हो। विभिन्न संगठनों द्वारा दिए गए आंकड़ों से साफ जाहिर है कि आम भारतीय महिला के लिए आर्थिक संपन्नता अभी बहुत दूर की चीज है, आर्थिक स्वतंत्रता की तो बात ही बेकार है।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अंतर्गत महिला और बाल विकास विभाग ने पिछले वर्ष 'कार्यमंच : पांच वर्ष बाद एक आकलन' में महत्वपूर्ण तथ्य दिए थे। इनके अनुसार 1999 में लोकसभा की 545 सीटों में से केवल 49 सीटें महिलाओं के पास थीं। वर्ष 1996 में उच्चतम न्यायालय के 25 न्यायाधीशों में से केवल तीन प्रतिशत महिलाएं थीं, और देश में कुल चार्टर्ड एकाउंटेंट्स में सिर्फ 5.8 प्रतिशत महिलाएं थी। विभिन्न क्षेत्रों में महिला भागीदारी में यह व्यापक अंतर इस बात का संकेत देता है कि अनेक सामाजिक कारणों से महिलाओं की विशाल क्षमता का उपयोग नहीं हो पाया है। इस कार्यमंच ने महिलाओं के विकास के लिए कुछ संस्थागत-तंत्र सुझाए थे जैसे महिला उत्थान के लिए राष्ट्रीय तंत्र और अन्य सरकारी संगठन गठित किए जाएं और मजबूत किए जाएं; कानून, सार्वजनिक नीतियों, कार्यक्रमों और परियोजनाओं में स्त्री-पुरुषों के नजरियों में तालमेल बिठाया जाए तथा आयोजना और क्रियान्वयन के लिए स्त्री-पुरुषों के बारे में पूरी सूचना एवं आंकड़ों को प्रसारित-प्रचारित किया जाए। लेकिन आकलन में साफतौर पर यह स्वीकार किया गया है कि दशकों से चल रहे विकास कार्यों के बावजूद कुछ क्षेत्रों में स्थिति आज भी निराशाजनक है। महिलाओं पर घरों के अंदर और बाहर अत्याचारों का होना, नर-नारी संख्या अनुपात में अंतर यानी प्रति 1000 पुरुषों पर 927 महिलाओं का होना और खेतों तथा घरों में महिलाओं के महत्वपूर्ण योगदान की अनदेखी कुछ ऐसी बातें हैं जिनके आधार पर तस्वीर मटमैली ही कही जा सकती है। नीति-निर्धारकों को इस सबके प्रति संवेदनशील बनाने के प्रयत्न करने होंगे ताकि आर्थिक और सामाजिक नीतियां तैयार करते समय इसके प्रभाव को ध्यान में रखा जाए। महिला क्षमता विकास, योग्यता वृद्धि के लिए संसाधन और सभी क्षेत्रों को जीवन की मुख्यधारा में शामिल करने की प्रतिबद्धता को प्रशासन और समाज में अधिक तेजी से मूर्त रूप देना होगा।

नेकनीयती से दिए गए ऐसे बयानों का अपना महत्व है लेकिन दुर्भाग्य से भारत में इन उद्देश्यों के लिए बातें ही अधिक की जाती हैं और जरूरतमंदों को आर्थिक अधिकार देने के लिए निचले स्तर पर कुछ नहीं किया जाता। निस्संदेह समाज के दृष्टिकोण को बदलने के लिए ठोस प्रयासों की जरूरत है, लेकिन इस दिशा में कोई खास काम नहीं हुआ है। इसके लिए जमीन से जुड़े एक शिक्षा कार्यक्रम की शुरुआत महत्वपूर्ण है। पुरुष रुपये-पैसे की झनझनाहट को ही सुनता-समझता है इसलिए उसे इसी भाषा में

पारिवारिक आमदनी में योगदान करती कुछ कामकाजी महिलाएं

समझाते हुए समस्या का समाधान निकालना होगा। इस प्रक्रिया में महिला को एक बड़े कैनवस पर नीचा दिखाया जा सकता है, लेकिन शोषक का ध्यान आकृष्ट करने के लिए अल्पकालिक उपाय के रूप में ऐसा करना जरूरी हो सकता है। निर्धन और धनाढ्य दोनों वर्गों के परिवारों में परंपरा से महिलाएं पुरुषों की जरूरतें पूरी करती रही हैं हालांकि पुरुष शारीरिक दृष्टि से अधिक हृष्ट-पुष्ट होते हैं और ज्यादा काम कर सकते हैं। निचले तबके के अनपढ़ लोगों में यह जाग्रति पैदा करने के लिए अभियान चलाया जाना चाहिए कि काम में बराबर की भागीदारी के आर्थिक लाभ क्या होंगे।

इस संबंध में खेत मजदूर का उदाहरण दिया जा सकता है। खेत पर काम करने वाला श्रमिक चाहेगा कि उसकी पत्नी या बेटी उसकी जरूरतें पूरी करने के लिए सवेरे जल्दी उठें और बाद में काम के लिए उसके साथ चलें। ऐसी मन:स्थिति वाले व्यक्ति को सहज भाव से बराबरी का मतलब समझाना होगा। उसे बताना होगा कि अगर सवेरे महिला के रोजमर्रा के घर के कामों में कोई उसका हाथ बंटाए तो खेत में वह अधिक श्रम करके अधिक उत्पादन कर सकेगी, जिसका मतलब यह है कि वह अधिक कमा सकेगी। अगर बच्चे कम हों तो आजीविका कमाने के लिए वह शारीरिक रूप से तंदुरुस्त रहेंगी और अधिक उम्र तक जीएगी। लड़की पैदा होने पर उसकी देखभाल और पोषण सही ढंग से हुआ तो वह स्वस्थ तो बनेगी ही, आने वाली पीढ़ी और भी तंदुरुस्त होगी और इस तरह वे घर के लिए अधिक फायदेमंद होंगी। वैसे भी कौन ऐसा पुरुष है जो आने वाली पीढ़ी के प्रति उदासीनता बरते। इस तरह की अपीलें शहरों और गांवों में सब प्रकार के गरीब लोगों से लगातार करते रहने की जरूरत है। निस्संदेह कई संगठन इस दिशा में काम कर रहे हैं, लेकिन उन जैसे अन्य संगठनों को भी इसमें योगदान करना होगा।

जहां तक सरकार का संबंध है उसे न सिर्फ इस क्षेत्र की गतिविधियों में तेजी लानी होगी, बल्कि यह भी समझना होगा कि लंबे समय तक महिला सशक्तिकरण की उपेक्षा का हानिकर प्रभाव आगामी पीढ़ियों पर पड़ेगा। यह प्रतिकूल प्रभाव न केवल मानव-संसाधनों की गुणवत्ता, उनकी उत्पादकता, उनके दृष्टिकोण, विदेशी पूंजी और प्रौद्योगिकी के हमले का सामना करने की उनकी ताकत पर पड़ेगा बल्कि उनकी आर्थिक स्वतंत्रता भी प्रभावित होगी। अपने ही वित्तीय बलबूते पर जिंदगी गुजारने वाले स्त्री-पुरुषों, युवाओं और वृद्धों की संख्या में निरंतर वृद्धि से ही एक अधिक स्वावलंबी और स्वतंत्र समाज का निर्माण संभव हो सकेगा। जब महिलाएं परिवार के भरण-पोषण के लिए पुरुषों पर अत्यधिक निर्भर नहीं होंगी बल्कि परिवार के सदस्यों की भलाई के लिए स्वयं निर्णय करने में समर्थ हो जाएंगी तो निस्संदेह रहन-सहन के स्तर में सुधार आएगा। अपनी आजीविका अर्जित करने में सक्षम महिलाएं गरीबी उन्मूलन की दिशा में भी योगदान कर सकती हैं। आर्थिक सशक्तिकरण के जरिए खानपान की चीजें आसानी से उपलब्ध कराकर वे अपने परिवार को भूख से छुटकारा दिला सकेंगी।

लेकिन महिलाओं की आर्थिक संपन्नता और स्वतंत्रता की राह में कई अड़चनें हैं। इनमें प्रमुख हैं—रोजगार का न मिलना, और मिले भी तो सही रोजगार का न मिलना, कार्यस्थल पर भेदभाव और असमान वेतन। इन्हें चाहे अधिकार का दर्जा दिया जा चुका है लेकिन ये अधिकार पुरुषों को अधिक मिलते हैं

जिन्हें अतीत काल से परिवार के कमाऊ सदस्य के रूप में चित्रित किया जाता रहा है। खेद की बात यह है कि गरीबी-रेखा के नीचे रहने वाले अधिकतर परिवारों में पुरुष वर्ग हर प्रकार के काम से दूर रहना पसंद करता है। परिवार के अपने ही वित्तीय बलबूते पर जिंदगी गुजारने वाले स्त्री-पुरुषों, युवाओं और वृद्धों की संख्या में विस्तार अधिक स्वावलंबी और स्वतंत्र समाज के निर्माण की दिशा में ठोस कदम होगा।

पुरुष महिला सदस्यों की गाढ़े पसीने की कमाई को शराब और जुए में उड़ा देता है। इन बातों को आमतौर पर सभी जानते, समझते और मानते हैं लेकिन बरबादी रोकने के सही उपाय नहीं किए जाते। यह बुरी आदत न सिर्फ यूं ही चलती रहती है बल्कि उग्रतर रूप लेती जाती है। परिणाम यह होता है कि लोगों को गरीबी के दलदल से निकालने के सभी प्रयत्न विफल रहते हैं। प्रकाशित तथ्य और आंकड़े इसी आदत की कहानी मुखर करते हैं। उदाहरण के लिए राष्ट्रीय महिला आयोग के अनुसार ग्रामीण महिलाएं खेतों में रोपाई, पशुधन प्रबंधन, मछली पालन, रेशम कीट पालन, मधुमक्खी पालन और पर्यावरण संरक्षण जैसे अनेक काम करती हैं। आयोग ने 1991 की जनगणना के हवाले से पाया कि 27.06 प्रतिशत ग्रामीण महिलाएं श्रमिक थीं जिनमें 19.07 प्रतिशत मुख्यत: श्रमिक और 8 प्रतिशत सीमांत श्रमिक थीं। मुख्य श्रमिकों में 31.68 प्रतिशत ही पुरुष थे। राष्ट्रीय महिला आयोग का यह भी कहना है कि 1977 और 1991 के बीच पुरुष कृषि-श्रमिकों की तुलना में महिला कृषि-श्रमिकों का अनुपात 57 से बढ़कर 60 प्रतिशत हो गया। साथ ही पुरुष-युवकों के मुकाबले महिला कृषकों का अनुपात 14.1 से बढ़कर 19 प्रतिशत हो गया। राष्ट्रीय महिला आयोग ने प्रौद्योगिकीपरक खेती का प्रशंसनीय लक्ष्य अपने सामने रखा है, जिसमें कृषि क्षेत्र में एक समग्र दृष्टिकोण और क्रांति लाने की आवश्यकता होगी। इस संदर्भ में विभिन्न राज्यों में गठित महिलाओं के स्व-सहायता समूह आर्थिक सशक्तिकरण की सीमित प्रगति के उज्ज्वल उदाहरण हैं। इन समूहों की भारत सरकार के संयुक्त खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम और संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका है। इन कार्यक्रमों में उत्तर प्रदेश में खाद्य सुरक्षा हेतु महिला किसान सशक्तिकरण के एक उप-कार्यक्रम में कृषि महिलाकरण पर जोर दिया गया है। इसका उद्देश्य भूमिहीन और सीमांत किसान परिवारों की कृषक महिलाओं को संगठित करना है ताकि वे भूमि, कर्ज, प्रौद्योगिकी, निविष्टि और सब्सिडी सहित उत्पादक परिसंपत्तियों की उपलब्धता के लिए कृषि विभाग और उसकी कृषि विस्तार प्रणाली से संपर्क कायम कर सकें। कार्यक्रम के अंतर्गत उनकी क्षमता वृद्धि के लिए कृषि में स्त्री-पुरुष मुद्दों, टिकाऊ कृषि, बंजर और परती भूमि को पुनरुत्पादक बनाने, उपयुक्त प्रौद्योगिकी और प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा।

राष्ट्रीय महिला आयोग ने प्रौद्योगिकीपरक खेती का प्रशंसनीय लक्ष्य अपने सामने रखा है, जिसमें कृषि क्षेत्र में एक समग्र दृष्टिकोण और क्रांति लाने की आवश्यकता होगी। इस संदर्भ में विभिन्न राज्यों में गठित महिलाओं के स्व-सहायता समूह आर्थिक सशक्तिकरण की सीमित प्रगति के उज्ज्वल उदाहरण हैं।

आंध्र प्रदेश में राज्य सरकार के कृषि विभाग, राज्य की महिला समता सोसाइटी, ग्रामीण निर्धनता उन्मूलन सोसाइटी और पर्यावरण चिंता केंद्र नामक एक गैर-सरकारी संगठन मिलकर एक टिकाऊ शुष्क भूमि खेती कार्यक्रम चला रहे हैं। उड़ीसा का कृषि प्रबंधन और विस्तार संस्थान तथा कृषि विभाग भी जनजातीय, भूमिहीन और सीमांत परिवारों की महिलाओं की खाद्य सुरक्षा और पोषण के लिए लगभग 25 गैर-सरकारी संगठनों के साथ मिलकर काम कर रहा है। कृषि क्षेत्र में, विशेष रूप से जनजातीय जिलों के कृषि क्षेत्र में महिला श्रमिकों की संख्या अधिक होने के कारण इस कार्यक्रम में पारिवारिक और सामुदायिक-स्तर पर खाद्य- सुरक्षा के मामले में समन्वित दृष्टिकोण अपनाने का सुझाव दिया गया है। यह काम वन संपदा के सामुदायिक प्रबंधन के जरिए किया जाएगा। लेकिन इन कार्यक्रमों की सफलता प्रतिभागियों के, न कि लाभार्थियों के हिस्सा लेने पर अधिक निर्भर करती है। कार्यक्रम के उद्देश्यों के अनुसार आयोजना में संसाधनों की रूपरेखा तैयार करने में समीक्षा और हस्तक्षेप आवश्यक है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि कार्यक्रम के लिए समर्थन समाप्त होने पर भी प्रतिभागी संसाधनों का बखूबी और लगातार लाभ उठाते रहें। महिला समूहों को, कृषि में इस्तेमाल होने वाली वस्तुओं जैसे—कूड़े-कचरे की खाद, जैव उर्वरक और प्राकृतिक कीटनाशकों के उत्पादन के लिए प्रेरित किया जा रहा है। प्रौद्योगिकीय निर्देशन में सूखे इलाकों जैसे राजस्थान और उत्तर प्रदेश में अंतरफसलीय उत्पादन के काफी अच्छे परिणाम निकले हैं। थोड़ी पूंजी की सहायता से महिलाओं को साहूकारों के शिकंजे से छुटकारा दिलाने में सहायता मिली है

और वे हर महीने 15 या 20 रुपये तक की सही, लघु बचत की दिशा में प्रेरित हुई हैं। कुछ ऐसे भी उदाहरण हैं जब इन लोगों ने थोड़ी मात्रा में अनाज का भंडारण कर, कमी के वक्त उसे दूसरों को उधार दिया और इस तरह गरीबों को महंगे दाम पर अनाज खरीदने की मुसीबत से बचाया। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम संगठन के एक अधिकारी के अनुसार उड़ीसा कार्यक्रम का एक परिणाम यह हुआ है कि फूलबनी के दारिंगबाड़ी खंड में महिलाओं के स्व-सहायता समूहों ने एक आकर्षक और व्यावहारिक आचार-संहिता तैयार की है। इसके अनुसार वे शराब छोड़ने और अपने पतियों को भी इसके लिए राजी करने पर सहमत हो गई हैं। यह समूह महीने में एक बार बैठक करेगा, प्रत्येक सदस्य अपने मकान के पिछवाड़े में फल और सब्जियां उगाएगा, कम-से-कम दो-तिहाई सदस्य अपने बच्चों को स्कूल भेजेंगे और वे न हिंसा करेंगे और न गालीगलौज। इन फैसलों को आंशिक रूप से भी लागू कर दिया जाए तो परिणाम के रूप में होने वाले आर्थिक लाभ स्वत: स्पष्ट हैं। महिला सशक्तिकरण के सकारात्मक पहलुओं के साथ ही उन्हें अपनी जरूरतों को लेकर आवाज बुलंद करने और अपनी बात सुनाने का अधिकार भी मिल सकेगा। ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा संग्रहीत आंकड़ों से प्रशासन में भी महिलाओं के भाग लेने का उत्साहवर्धक रुझान प्रकट होता है। पंचायतों के विभिन्न स्तरों पर महिला प्रतिनिधित्व बढ़ रहा है। वर्ष 1999 में पंचायत समितियों में महिलाओं का प्रतिशत 33.75 प्रतिशत, ग्राम पंचायतों में 40 प्रतिशत और जिला परिषदों में 32.28 प्रतिशत था। जैसे-जैसे महिलाएं सामाजिक-आर्थिक मामलों में अधिक निर्णायक आवाज बुलंद करेंगी, समाज में उनकी स्थिति और आर्थिक शक्ति बढ़ती जाएगी। गांवों से शहरी इलाकों में जाने पर रोजी-रोटी कमाने वाली महिलाओं की गुणात्मक आवश्यकताएं भी बदल जाती हैं। शहरों की गरीब महिलाएं निर्माण, घरेलू कामकाज में सहायता और यौन-शोषण से रक्षा जैसे नए कामों में लग जाती हैं। नतीजतन वे बेहतर रहन-सहन, पेयजल और शिशु-सदन आदि की मांग करेंगी। औपचारिक क्षेत्र की महिलाएं स्त्री-पुरुष के बीच अधिक बराबरी, काम की बेहतर शर्त, बेहतर परिवहन सुविधा, सामाजिक और रोजगार सुरक्षा और यहां तक कि भावात्मक सुरक्षा भी चाहेंगी। महिला सशक्तिकरण के लिए पोषण और साक्षरता ऐसे प्रमुख क्षेत्र हैं जिनके लिए निरंतर अधिक प्रयत्न करने की आवश्यकता है। देश के कई भागों में पोषण और खान-पान में असंतुलन की स्थिति चली आ रही है। कई बार लिंग भेद गर्भावस्था से ही आरंभ हो जाता है और कई रूपों में प्रकट होता है। लड़की के प्रति उपेक्षा उसके जन्म से ही शुरू हो जाती है। किशोरावस्था तक उसे घटिया भोजन दिया जाता है। बढ़ती उम्र के दौरान भी उससे कठिन परिश्रम कराया जाता है और मानसिक यातनाएं दी जाती हैं। मां बन जाने के बाद भी शायद ही कभी उसकी स्थिति में बदलाव आता है। भेदभाव के संसार में जन्मी लड़की को यही सिखाया जाता है कि वह दूसरों पर छींटाकशी न करे और न अपने बंधनों और मर्यादाओं को तोड़े। आर्थिक दृष्टि से पराश्रित होने के कारण मां अपनी मादा संतानों को बार-बार नसीहत देती है कि लड़कियों को विनम्र व्यवहार का प्रदर्शन करना चाहिए और सीख की यह गाथा पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती रहती है।

लेकिन शिक्षा और आजादी मानसिकता को पूरी तरह बदल सकती हैं जैसाकि सफलता की छुटपुट घटनाओं से स्पष्ट है। असली चुनौती और महत्व इन परीक्षणों की लाखों-करोड़ों बार पुनरावृत्ति में है। तभी लिंग-भेद में जकड़ी महिलाओं की समस्याओं का तेजी से समाधान संभव है। हम महिला सशक्तिकरण को जितना अधिक टालेंगे, भावी पीढ़ियों के कमजोर होने का डर बढ़ता जाएगा। परवर्ती संतानें समाज की सामान्य भलाई के कठिन काम को बखूबी नहीं कर पाएंगी। यह एक ऐसी स्थिति है जो राष्ट्र के लिए अहितकर होगी। ❑

(सुश्री हरजीत अहलूवालिया दिल्ली की वरिष्ठ आर्थिक पत्रकार हैं।)

(पृष्ठ 18 का शेष)

व्यवस्था भी होनी चाहिए। नए अवसर वर्तमान कुशलता पर आधारित करना महत्वपूर्ण है।

अंत में यह बात दोहराई जा सकती है कि महिलाएं महत्वपूर्ण आर्थिक एजेंट होती हैं। अनुसंधान के क्षेत्र में पहला कदम उसके योगदान को दृष्टिगोचर बनाना है। अगला कदम उनके कार्य, उनकी आय और प्रगति के अवसरों की गुणवत्ता में सुधार लाना है। इसके लिए हमें महिला कल्याण में अधिक संसाधन लगाने होंगे। साथ ही यह भी समान रूप से महत्वपूर्ण है कि स्त्री-पुरुषों को लेकर समाज के नजरिए में परिवर्तन लाया जाए, ताकि पुनरुत्पादक कार्य केवल स्त्रियों की जिम्मेदारी न रहे। ❑

(सुश्री रत्ना एम. सुदर्शन राष्ट्रीय व्यावहारिक अनुसंधान परिषद में प्रमुख अर्थशास्त्री हैं।)

कानून और लिंग-भेद रहित न्याय

सुजाता मनोहर

एक नया समानतापूर्ण माहौल तैयार करना आज हमारे सम्मुख एक बड़ी चुनौती है। इस दिशा में राष्ट्रीय नेताओं को ही धर्म के आधार पर भेदभाव किए बिना नेतृत्व प्रदान करना होगा। चूंकि इस प्रयास में कानून की भूमिका महत्वपूर्ण है, इसलिए महिला सशक्तिकरण के दृष्टिकोण से क़ानून में सुधार की भी अहम भूमिका है।

जब संयुक्त राष्ट्र चार्टर में विश्व के देशों ने मूलभूत मानवाधिकारों में, मानव की गरिमा और मूल्य में तथा पुरुष-स्त्री समानाधिकारों में अपनी आस्था दोहराई थी, तब उन्होंने एक ऐसी न्यायोचित व ईमानदार सामाजिक, कानूनी, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था कायम करने का नैतिक वायदा किया था, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को वास्तविक अर्थों में समान समझा जाए और जो व्यक्ति को उसकी योग्यतानुसार बिना लिंग, वंश, धर्म, जाति, आदि भेद के योगदान के लिए प्रेरित कर सके। समानता लाने और भेदभाव मिटाने की यही वचनबद्धता पिछली सदियों और नई सहस्राब्दी में प्रवेश कराने वाली पिछली सदी के बीच का आधारमूलक अंतर है।

अन्याय या बेईमानी हमेशा ही लोगों की स्मृति पर एक अमिट छाप छोड़ जाती है। अब चाहे एकलव्य हो, जिसे गुरुदक्षिणा में दाएं हाथ का अंगूठा काट कर देना पड़ा, या फिर ढाका के बुनकर, जिन्हें बुनाई से रोकने के लिए जबरन उनके अंगूठे काट दिए गए। कौरवों के दरबार में द्रौपदी का चीरहरण भी ऐसी ही एक घटना है। स्त्रियों के प्रति ऐतिहासिक अन्याय के बारे में विश्व की जागरुकता बढ़ी है। स्त्रियों के खिलाफ सभी तरह के भेदभाव दूर करने के बारे में हुई संधि में इस चिंता को उजागर किया गया है। इसमें कहा गया है कि स्त्रियों के खिलाफ भेदभाव से अधिकारों की समानता के सिद्धांत का उल्लंघन होता है। यह मानवीय गरिमा के खिलाफ है। इससे देशों के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन में स्त्रियों की पुरुषों के साथ समानता के आधार पर भागीदारी में बाधा आती है, समाज और परिवार की समृद्धि अवरुद्ध होती है और अपने-अपने देश की और मानवता की सेवा में स्त्रियों की क्षमता का पूर्ण विकास अधिक कठिन हो जाता है।

हम यह नहीं कहना चाहते कि बीते काल में स्त्रियों के प्रति व्यवहार सम्मानजनक नहीं था या असाधारण योग्यता वाली स्त्रियों को मान्यता नहीं मिली। मैत्रेयी या लक्ष्मीबाई का तो सम्मान होना ही था। हमारे देश में बच्चों के लिए प्राण न्यौछावर कर देने वाली माताओं तथा पति और परिवार की निस्वार्थ सेवा करने वाली स्त्रियों का सदा सम्मान किया जाता रहा। निस्वार्थ सेवा का इससे बड़ा उदाहरण और क्या होगा कि वे पति व बच्चों को खिलाने के बाद बचा-खुचा खाती रही हैं। वे घर-बाहर के सभी काम करती हैं, उनका सम्पूर्ण जीवन अपने पति व बच्चों के प्रति समर्पित रहा है और इसीलिए विधवा होने पर उनका मूल्य ही घट जाता है। मूल्यों की इस व्यवस्था के कुछ दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम निकले। स्त्रियों को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता नहीं दी गई। वे घरेलू कामकाज और सम्बद्ध गतिविधियों तक ही सिमट कर रह गई, उन्हें शिक्षा और आर्थिक अधिकारों से वंचित रखा गया। स्त्रियों के अवमूल्यन से बालिका-भ्रूण हत्या, बाल-विवाह, परिणामस्वरूप माताओं की मृत्यु व अपंगता, दहेज व इससे जुड़े अपराध तथा ऐसी अन्य कुप्रथाओं ने जन्म लिया। इसीलिए आज

महिला संबंधी कानून के संशोधन में महिला नेता महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

हमें महिला सशक्तिकरण की जरूरत है। समर्पण और आत्म-बलिदान के गुणों को नकारने की नहीं, बल्कि यह सुनिश्चित करने की जरूरत है कि ये मूल्य जबरन महिलाओं के लिए ही न मान लिए जाए, पुरुष-स्त्री तथा समूचा समाज समान रूप से इन मूल्यों को अपनाए और स्त्री-पुरुष दोनों ही अन्य मूल्यों को भी समान रूप से स्वीकार करें तथा जिम्मेदारियों को भी समान तौर पर वहन करें, फिर चाहे यह जिम्मेदारी बच्चों के लालन-पालन की हो, परिवार की देखभाल या राष्ट्र निर्माण गतिविधियों में योगदान की हो अथवा घर से बाहर सामाजिक-आर्थिक या राजनीतिक-सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेने की।

आज विश्व में इस बात को अच्छी तरह समझा जा रहा है कि पुरुषों व स्त्रियों की योग्यताएं एवं क्षमताएं बराबर हैं और पुरुषों व स्त्रियों का आचरण स्वाभाविक अंतर के बजाय सामाजिक एवं सांस्कृतिक अपेक्षाओं से अधिक निर्धारित होता है। इस बढ़ती जागरुकता के कारण ही पुरुषों और स्त्रियों की भूमिका के बारे में विश्व सोच में बुनियादी परिवर्तन आया है। जब ये काल्पनिक अंतर निर्णय लेने की शक्ति प्रदान करने के बजाय भेदभाव के रूप में सामने आते हैं, तो ये अन्याय का कारण बनते हैं या इनसे भेदभावपूर्ण दृष्टिकोण और मूल्य उत्पन्न होते हैं। दुर्भाग्य से दृष्टिकोण संबंधी ये मतभेद परिवारों में ही नहीं, बल्कि समाज तथा विभिन्न संस्थानों में भी देखने में आते हैं। ये स्त्री-पुरुष भेदभाव को मजबूत करते हैं और उसे बढ़ावा देते हैं। इसलिए जरूरी है कि पूरा समाज, पुरुष और स्त्री, समान रूप से असमानता की इस अवधारणा को समझें और इसकी समाप्ति के लिए प्रयास करें। यह महिलाओं के सशक्तिकरण का ही मामला नहीं है, यह अनुभवजन्य असमानताओं पर काबू पाने और अनुचित व्यवहार को मिटाने के लिए सामाजिक क्रांति की बुनियादी जरूरत है। इस मानव परिवार में हर स्तर पर और इसके सभी सदस्यों में व्यवहारजन्य परिवर्तन लाने की जरूरत है।

इस सामाजिक क्रांति के प्रति हमारी वचनबद्धता अत्यंत विशिष्ट है। जब हमने स्वतंत्र भारत के संविधान को अंगीकार किया, तब अपने लिए एक न्यायपूर्ण सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था का वायदा किया था, जिसमें समानता को सर्वोपरि स्थान प्राप्त था। मानवाधिकारों को संविधान के तहत 'मूलभूत अधिकार' कहा गया है और हम इन्हें न्यायपालिका के दायरे में लाए संविधान के तहत समानता और भेदभाव-रहित तथा गरिमापूर्ण जीवन जीने का अधिकार सुनिश्चित किया गया है। अदालतों ने इन अधिकारों की व्याख्या अंतर्राष्ट्रीय संधियों, प्रतिज्ञा-पत्रों, समझौतों और सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणा; नागरिक और राजनीतिक तथा आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकार संबंधी प्रतिज्ञा-पत्रों तथा स्त्रियों के खिलाफ हर तरह का भेदभाव समाप्त करने संबंधी संधियों में निहित मापदंडों के अनुरूप की है। उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि कोई विपरीत कानून न हो तो भारत ने जिन अंतर्राष्ट्रीय संधियों की पुष्टि की है, वे लागू होंगी। इस तरह संविधान और कानून को अंतर्राष्ट्रीय तौर पर समझे जाने वाले निहिताशयों सहित मानव तथा बुनियादी अधिकारों का संरक्षक माना गया है। वंचित वर्गों तक (इसमें महिलाएं भी शामिल हैं) न्यायिक प्रणाली की पहुंच बढ़ाने के लिए न्यायालयों को जनहित याचिकाओं की सुनवाई की अनुमति

दी गई है ताकि कानून के सहारे स्त्रियां बेइंसाफी दूर करने के लिए न्यायालय की शरण में जा सकें। इसीलिए मुथम्मा आई.एफ.एस. की भेदभावपूर्ण सेवा-शर्तों को चुनौती दे सकी, जिनके तहत विवाह होने पर स्त्री को नौकरी छोड़नी पड़ती थी। एयर इंडिया में विमान परिचारिकाओं की भेदभावपूर्ण सेवा-शर्तों को नर्गेश मिर्जा ने धारा 14 के तहत चुनौती दी थी। और हाल ही में नीरजा माथुर को गर्भवती होने पर उसके नियोक्ता ने नौकरी से निकाल दिया था। उसने उच्चतम न्यायालय में अपनी बर्खास्तगी को चुनौती दी और वह मुकदमा जीती। धारा 21 में निहित गरिमापूर्ण जीवन के लिए भी जरूरी है कि उचित कानून बनाए जाएं, ताकि महिला श्रमिकों को संरक्षण दिया जा सके। मातृत्व अवकाश, चिकित्सा सुविधा, गर्भावस्था के दौरान बर्खास्तगी के खिलाफ संरक्षण, नवजात शिशु और मां की स्वास्थ्य रक्षा आदि का उद्देश्य अपने उत्तरदायित्वों के साथ-साथ काम करने के स्त्रियों के अधिकारों को व्यावहारिक बनाना है।

सवाल यह है कि स्त्रियों को सशक्त बनाने में कानून की भूमिका कितनी महत्वपूर्ण है? आजकल स्त्रियों के सशक्तिकरण में कानून की भूमिका नकारना एक फैशन-सा बन गया है। कहा जाता है कि कानूनों के बावजूद दहेज और दहेज-मौतें अभी भी जारी हैं। इतना ही नहीं, इन मामलों में वृद्धि हुई है तथा हिन्दू कानून में संशोधनों के बावजूद अभी भी परिवारों में औरतों के प्रति भेदभाव बरता जा रहा है। ऐसा क्यों है? यह इसलिए है कि लोग और विशेषकर स्त्रियां अपने कानूनी अधिकारों से अनभिज्ञ हैं, और अपने अधिकारों को लागू करने का उनके पास कोई जरिया नहीं है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि सामाजिक खींचतान और दबावों के चलते वे अपने अधिकारों के लिए लड़ नहीं पाती। सामाजिक सोच में कोई खास बदलाव नहीं आया है, हालांकि कानून की मदद से एक अधिक अनुकूल वातावरण बन सका है। वैसे यह ध्यान में रखना जरूरी है कि जब तक कानून से समानता और ईमानदारी का माहौल नहीं बनता, तब तक इस भेदभाव से छुटकारा पाने की कोई संभावना नजर नहीं आती। अगर भेदभाव को कानून की अनुमति या मंजूरी मिलती रहेगी, तो सामाजिक दृष्टिकोण नहीं बदलेगा और अगर दृष्टिकोण बदलते हैं, तो नई आकांक्षाओं को मूर्त रूप देने के लिए कोई कानून नहीं है।

अभी तो पर्याप्त कानून ही नहीं है और पारंपरिक क्षेत्रों में समानतापूर्ण कानूनों की व्यवस्था के लिए हमें अभी लम्बा रास्ता तय करना है। महिलाओं के अनिवार्य सरोकारों के क्षेत्र में वैवाहिक दर्जा, बच्चों की अभिरक्षा, घर और भरण-पोषण का अधिकार, विरासत और उत्तराधिकार, दत्तक संबंधी पारिवारिक कानून तथा हिंदुओं के लिए संयुक्त परिवार और उसकी संपत्ति में अधिकार शामिल हैं। वर्ष 1955 और 1956 के संशोधनों के बावजूद अधिकांश हिंदू कानूनों का आधार अभी भी पुरुषों और स्त्रियों के वैधानिक अधिकारों में विभेदीकरण है। यहां तक कि संशोधित कानून में भी संयुक्त पारिवारिक संपत्ति में स्त्रियों को समानाधिकार मिलने के बारे में कोई व्यवस्था नहीं है। केवल तीन राज्यों ने ही पुत्रियों को समभागी बनाने के लिए अपने कानूनों में संशोधन किया है। जरूरत केन्द्र सरकार के हस्तक्षेप की है। हाल ही में उच्चतम न्यायालय ने कहा था कि महिलाओं द्वारा संयुक्त हिंदू परिवार बनाने के लिए एक पुरुष की उपस्थिति अनिवार्य है। स्त्रियों को अपने बच्चों के अभिभावकत्व के समान अधिकार नहीं होते। यहां तक कि उत्तराधिकार का संशोधित हिंदू कानून भी स्त्री के उत्तराधिकारियों और पुरुष के उत्तराधिकारियों के बीच अंतर करता है। कानून बनाने वाले यह देखना भूल गए कि कोई स्त्री कमा सकती है और अपनी संपत्ति बना सकती है, जिसका प्राकृतिक उत्तराधिकारी उसका पति नहीं बल्कि उसके भाई-बहन होंगे। उम्मीद है कि तलाक-संबंधी ईसाई कानून में अब संशोधन किया जाएगा। विरासत का पारसी कानून संशोधित हो चुका है और इसके लिंग संबंधी भेदभाव दूर किए जा चुके हैं लेकिन मुस्लिम महिलाओं को किसी सुधार का लाभ नहीं मिला है। वर्ष 1952 में जब धारा 14 और 15 के तहत निजी कानूनों को भेदभावपूर्ण मानकर चुनौती दी गई थीं, तब न्यायालय ने कहा था कि भेदभावपूर्ण होने के बावजूद इन्हें विधायी कार्यवाई से बदला जा सकेगा। 50 साल होने को आए, लेकिन यह विधायी कार्यवाई अभी भी पूरी नहीं हुई है। जब भारत ने सी ई डी

वर्ष 1955 और 1956 के संशोधनों के बावजूद अधिकांश हिंदू कानूनों का आधार अभी भी पुरुषों और स्त्रियों के वैधानिक अधिकारों में विभेदीकरण है। यहां तक कि संशोधित कानून में भी संयुक्त पारिवारिक संपत्ति में स्त्रियों को समानाधिकार मिलने के बारे में कोई व्यवस्था नहीं है। केवल तीन राज्यों ने ही पुत्रियों को समभागी बनाने के लिए अपने कानूनों में संशोधन किया है। जरूरत केन्द्र सरकार के हस्तक्षेप की है।

ए डब्ल्यू पर हस्ताक्षर किए थे तो उसने एक आपत्ति दर्ज कराई थी कि निजी कानूनों को तभी बदला जाएगा, जब सम्बद्ध धार्मिक समूह संशोधन की मांग करेंगे। लेकिन संशोधन की मांग करेगा कौन? दबाई हुई महिलाएं, जो इतनी कमजोर हैं कि अपने विचारों को बलपूर्वक नहीं कह पातीं और उन्हें जाहिर नहीं कर पातीं? या फायदा उठाने वाले पुरुष? महिलाओं को सहारा देने के लिए जरूरी है कि पुरुष पढ़े-लिखे हों तथा महिलाओं के प्रति भेदभाव से वाकिफ हों, अपने आसपास की असमानताओं को देख सकें और बदलाव की मांग कर सकें। यह तभी हो सकता है जब समूचे देश में स्त्रियों के प्रति संवेदनशीलता विकसित की जाए और भेदभाव समाप्त करने के लिए सुविचारित प्रयास किए जाएं। एक नया समानतापूर्ण माहौल बनाना एक बड़ी चुनौती है। इस मामले में पथ-प्रदर्शन राष्ट्रीय नेतृत्व से आना चाहिए, फिर चाहे ये राष्ट्रीय नेता किसी भी धर्म के अनुयायी क्यों न हों। इसके लिए शिक्षा, आर्थिक अवसर, सामाजिक स्वीकृति, अनुकूल वातावरण, स्वास्थ्य रक्षा, बाल सहायता सेवा, प्रजनन अधिकारों पर नियंत्रण, आदि पर जोर देना होगा। पूरी तरह कारगर होने के लिए जरूरी है कानून के लिए अनुकूल माहौल। इसके बावजूद इसकी प्रमुख भूमिका है—यह शिक्षित कर सकता है और परिवर्तन का माध्यम हो सकता है। अत: महिला सशक्तिकरण के लिए कानून में सुधार अनिवार्य है।

'बदलते समाज में कानून की भूमिका' के बारे में किए अपने कार्य में प्रोफेसर फ्राइडमेन ने कानून की भूमिका की दो भिन्न अवधारणाओं की चर्चा की है। एक समूह में वे हैं जो मानते हैं कि कानून को नेतृत्व नहीं बल्कि अनुसरण करना चाहिए और ऐसा इसे स्पष्ट तौर पर उभरने वाली सामाजिक भावना के प्रत्युत्तर में धीरे-धीरे करना चाहिए।'' दूसरा समूह उनका है जो मानते हैं कि नए मापदंड बनाने में कानून एक निर्धारित एजेंट होना चाहिए। हम किसी के लिए एक, और किसी के लिए दूसरा मापदंड नहीं रख सकते। जनमत और विधायी प्रक्रिया के बीच निरंतर तालमेल जरूरी है। किसी भी लोकतांत्रिक प्रणाली में चुनौती और प्रतिक्रिया के अलग-अलग स्वरूप होते हैं। उचित कानून और उस पर उचित ढंग से अमल द्वारा सशक्तिकरण में गतिशीलता उत्पन्न की जा सकती है। ❑

(सुश्री सुजाता मनोहर उच्चतम न्यायालय की भूतपूर्व जज एवं राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, नई दिल्ली की सदस्य हैं; लेख मानव संसाधन विकास मंत्रालय के 'महिला एवं बाल विभाग' द्वारा आयोजित अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस समारोह में दिए गए उनके भाषण पर आधारित है।)

I.A.S./I.E.S.

IFS RAS UPPCS BPSC MPPCS

SUBJECTS AVAILABLES

- History, Sociology, Political Science, General Studies, Essay,
- Economics, Law, Commerce, Public Admn.,
- Pali "Lit", Hindi "Lit", Sanskrit "Lit"
- Maths, Chemistry, Physics, Agriculture, Zoology, Botany
- Civil Engg., Mechanical Engg., Electrical Engg., E & T Engg.

POSTAL COURSE AVAILABLE

IN ENGLISH MEDIUM:

For Main's : History, Sociology, Public Admn., Economics, Pali 'Lit', Civil Engg., Mech Engg., Physics, Chemistry, Zoology, Botany & General Studies.

For Prelim's: History, Sociology, Economics, Geography, Chemistry, Commerce, Civil Engg., Mech Engg., Physics, Maths, Zoology, Botany, Agriculture & General Studies.

IN HINDI MEDIUM:

For Main's : History, Sociology, Public Admn., Pali 'Lit' & General Studies.

For Prelim's: History, Sociology, Economics & G.S.

Fee for Main's : Rs. 1500/-
For Prelim's : Rs. 1100/-
For Engg. Subject : Rs. 2500/-

Stars of the year 2000-01

Rank-12 Nidhi Pandey

Rank-21 Ashwani Kr. Yadav

Rank-27 Naveen Jain

OTHER SELECTIONS IN IAS 2000

Paramita Chowdhary-38, Vijay Nehra-70, Sumit Jain-95, Airiju Jalkaran-110, Ashutosh Kumar-116, Roopak Kumar-123, Nishit Kumar-138, Jyotsna Pandey-187, V.C. Sekhar-194, Nitesh Jha-214, Atul Saxena-224, Rajiv Jain-230, Ajay-249, Rajesh Kumar-344, Kashav Kumar-367, Anil, Rajiv, Vijay, Sanjay, Manoj Many more

SELECTION IN IFS-2000

Keshav Kumar, Ashutosh, Supongnukshi

More than 75 selections in UP, RAS & MPPSC 2000

Selections in IES-2000 :-

CIVIL ENGG.

A.K. Ojha-9, S.R. Singh-16, J.P. Yadav-50, M.K. Gupta-68, Om Prakash-70, Manoj-101, P.K. Mittal-102, O.P. Gupta-112, Narender Sharma-123, S.K. Jain-124, S.K. Singh-142, Pankaj Dixit-152, Km. Jyoti-180, K.Avinav-202, A.K. Yadav-215, P. Kumar-221, A. Basti-239, V.V. Sudhakar-264, S.N. Meena-276 U.S. Kal-280, P.K. Singh-281

Electrical Engg.

M.K. Goel-31, N. Joshi-50, T.P. Narayan-66, Manish-64, Vikram Singh-73, Vipin Pal-85

E & T Engg.

Atique Ahmad-22, Sanjeev-25, Akmal-89, R.K. Chhanena-112, S.N. Meena-123

Mechanical Engg.

R.R.K. Singh-7, Vivek Acharya-10

NORTH DELHI
H.O.: 302/A-37,38,39, Ansal Building, Commercial Complex, Near Batra Cinema, Manoranjan Restaurant, Mukherjee Nagar, Delhi-9
Ph.: 7652829, 7654588
(Service 24 Hours)

Career Plus

SOUTH DELHI
B.O.: 28-B/4 Jia Sarai
Near I.I.T. Main Gate
Hauz Khas
New Delhi-110016
Ph.: 6527448
(Service 24 Hours)
E-mail : careerplus@rediffmail.com

{Under Career Plus Educational Society (Regd.)}

For More Details Write with Rs. 30/- M.O./D.D. to the Director

• Hostel Facility (Arranged) • Also in Hindi Medium • Batches from 10 & 25th of every Month

कितने प्रभावी हैं कानून?

कुसुम

समस्त कानून न्याय नहीं होता और न ही सब प्रकार के न्याय के लिए कानून आवश्यक है। महिलाओं को कारगर तरीके से अधिकारसंपन्न बनाने के लिए कानून और न्याय को एक-दूसरे का पूरक और सहायक बनना होगा।

न्यायाधीश कृष्ण अय्यर के शब्दों में "यह एक कठोर सत्य है कि शाब्दिक लफ्फाज़ी के बावजूद महिलाएं ऐसे घोर भेदभाव और अपमान की शिकार हैं जिसे देखकर लगता है कि हम इंसानियत से गिर गए हैं और यही भारत में स्त्री-पुरुष संबंधों की वास्तविकता है।"

तथापि महिलाओं में जाग्रति और सशक्तिकरण के लक्षण दिखाई देने लगे हैं। विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय सम्मेलन, संवैधानिक आदेश और निर्देश, 'महिला अंतर्राष्ट्रीय वर्ष' और 'महिला दशक' की घोषणा तथा विभिन्न सरकारी योजनाएं और नीतियां महिला सशक्तिकरण की राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय चिंता की सूचक हैं।

इस सबके मद्देनजर महिलाओं के लिए काफी संख्या में विशेष कानून बनाए गए हैं या फिर सामान्य कानूनों में महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं या किए जा रहे हैं।

लेकिन मूल मुद्दा यह है कि क्या ये कानून वास्तव में महिलाओं को अधिकारसंपन्न बनाने में कारगर हैं। अगर हैं, तो कहां तक। इसलिए सारभूत कानूनों, उनके क्रियान्वयन और महिलाओं को अधिकारसंपन्न बनाने में उनकी भूमिका का लेखा-जोखा करना उचित होगा। आगे महिलाओं से संबद्ध चुनिंदा कानूनों और न्यायिक निर्णयों की संक्षिप्त समीक्षा की गई है।

संपत्ति अधिकार

यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि सशक्तिकरण का सबसे प्रभावी अंग वित्तीय सुरक्षा और संपत्ति पर अधिकार है। इस संदर्भ में उत्तराधिकार कानूनों की चर्चा की जा सकती है। भारत में विभिन्न व्यक्तिगत कानूनों के अंतर्गत महिलाओं को अलग-अलग उत्तराधिकार प्राप्त हैं। इस संबंध में अगर किसी कानून ने महिलाओं को सबसे ज्यादा अधिकार दिए हैं तो वह है—हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956। इस अधिनियम ने संपत्ति पर महिला के अधिकार में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया है। एक महिला को पुरुष उत्तराधिकारी की ही तरह उत्तराधिकार के बराबर अधिकार मिल गए हैं। संपत्ति पर पूर्ण स्वामित्व होने के नाते महिलाओं को बिना रुकावट वसीयत करने का अधिकार है। इसके बावजूद अधिनियम में अब भी कुछ ऐसे प्रावधान हैं जिनसे पुरुष श्रेष्ठता के परंपरागत लोकाचार की गंध आती है। सबसे स्पष्ट अनुच्छेद छह है, जिसके अंतर्गत संयुक्त उत्तराधिकार पुरुषों तक सीमित है। इनका जन्म से ही संपत्ति पर अधिकार हो जाता है। इसके अलावा संपत्ति पर अधिकार जीवित सह-उत्तराधिकारियों को अपने जिंदा होने के आधार पर मिल जाता है। जबकि अपने पति/पिता की मृत्यु हो जाने पर कोई विधवा या पुत्री जीवित होने के आधार पर किसी चीज पर दावा नहीं कर सकती। लेकिन कुछ रियायत के रूप में अनुच्छेद छह के अंतर्गत ऐसे मृत व्यक्ति का हिस्सा, अपने पीछे छोड़ी गई वर्ग एक में उल्लिखित महिला रिश्तेदार को या इस वर्ग में उल्लिखित उस पुरुष को मिलेगा जो इस महिला की मार्फत दावा करे। संपत्ति का यह हिस्सा कानून के अंतर्गत वसीयत या बिना वसीयत वाले उत्तराधिकार के आधार पर मिलेगा, न कि जीवित रहने के आधार पर। नतीजतन पुत्र जीवित सह-उत्तराधिकारी के वारिस के नाते दोनों रूपों में संपत्ति हासिल

करता है, जबकि विधवा, मां और पुत्री संपत्ति में मृत व्यक्ति के अधिकार में से ही वारिस की हैसियत से हिस्सा प्राप्त कर सकती हैं। अगर कोई व्यक्ति मरने से पहले महिला उत्तराधिकारियों को जायदाद से अलग रखने या सह-उत्तराधिकारिता में अपना हक छोड़ने का वसीयतनामा लिख दे तो ये महिलाएं इस सीमित अधिकार से भी हाथ धो सकती हैं।

मुस्लिम कानून के अंतर्गत व्यक्ति कर्जों के भुगतान और अंतिम संस्कार के खर्चे को निकाल कर बाकी जायदाद के एक-तिहाई हिस्से तक का हलफनामे से निपटारा कर सकता है। बाकी दो-तिहाई संपत्ति उत्तराधिकारियों को उनके हक के अनुसार विरासत में मिल जाती है। इस तरह उक्त विरासत का हक रखने वाली महिला को कोई व्यक्ति मरने से पहले उसके हिस्से से, चाहे वह कितना ही क्यों न हो, बिल्कुल वंचित नहीं कर सकता।

इसाई कानून के अंतर्गत बिना वसीयत वाली संपत्ति के उत्तराधिकार में स्त्री-पुरुष में बराबरी के सिद्धांत को मान्यता दी गई है। विधवा को अपने पति की जायदाद में से एक-तिहाई भाग मिलता है। बाकी संपत्ति लड़के-लड़कियों में बराबर बांट दी जाती है।

'मेरी रॉय बनाम राज्य' मुकदमा इस दिशा में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर है। इसके फैसले के अनुसार केरल में बिना वसीयत की जायदाद में लड़कियों को लड़कों के बराबर हकदार माना गया है। उत्तराधिकार और दायभाग के मामले में पूर्व ट्रावनकोर रियासत में रहने वाले भारतीय इसाईयों पर ट्रावनकोर इसाई उत्तराधिकार अधिनियम 1916 लागू था। इसमें महिलाओं के साथ भेदभाव बरतने वाले प्रावधान थे। विधवा को बिना वसीयत वाली जायदाद में केवल आजीवन अधिकार रहता था और यह अधिकार भी सीमित था, क्योंकि मृत्यु या पुनर्विवाह होने पर यह समाप्त हो जाता था। जहां तक पुत्री का संबंध है, उसे पुत्रों के हिस्से के मूल्य का चौथाई भाग या पांच हजार रुपये जो भी कम हो—लेने का अधिकार प्राप्त था। लेकिन अगर पुत्री को बिना वसीयतनामे के उस स्त्रीधन का भुगतान कर दिया गया हो या उसे देने का वचन दे दिया गया हो तो वह यह राशि भी पाने की हकदार नहीं रहती थी। उच्चतम न्यायालय ने बराबरी के अधिकार के उल्लंघन के मुद्दे पर विचार नहीं किया (हालांकि यह चुनौती के लिए महत्वपूर्ण आधार प्रदान करता था), तो भी उसने व्यवस्था दी कि भाग 'बी' राज्य (कानून) अधिनियम, 1951 की धारा तीन के अंतर्गत भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम के भाग 'बी' राज्यों पर लागू हो जाने के बाद 1951 में ट्रावनकोर उत्तराधिकार अधिनियम, भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम 1925 द्वारा रद्द हो गया था।

यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि कानून विभिन्न तरीकों से महिलाओं को अधिकारसंपन्न और अधिकारविहीन बना सकता है। इस संदर्भ में एक रिहायशी घर के विभाजन के लिए महिला अधिकार के संबंध में हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम के अनुचित प्रावधान की चर्चा की जा सकती है। अधिनियम के अनुच्छेद 23 के अंतर्गत महिला वारिस तब तक उस रिहायशी घर के बंटवारे का दावा नहीं कर सकती जिस पर मृत व्यक्ति के परिवार के सदस्य काबिज हों, जब तक पुरुष वारिस उसमें अपने हिस्सों के बंटवारे का फैसला न कर लें। यहां तक कि कोई विधवा जो जीवन-भर अपने मृत पति के साथ मकान में रही हो, या उसे बनाया हो, वह भी विभाजन की मांग नहीं कर सकती। दुर्भाग्य से उच्चतम न्यायालय ने नरसिम्हा मूर्ति बनाम सुशीला बाई मुकदमे में कुछ और आगे बढ़कर यह व्यवस्था दी कि एक ही पुरुष वारिस होने पर भी महिला वारिसों के खिलाफ रोक बनी रहेगी। हैरानी की बात यह है कि जब एक ही पुरुष वारिस हो तो उसके हिस्से की जायदाद को विभाजित करने का सवाल ही कैसे उठ सकता है। हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम के एक अन्य प्रावधान का यहां उल्लेख किया जा सकता है जिससे महिलाओं का एक वर्ग यानी विवाहित पुत्रियां मजबूत होने की बजाए कमजोर पड़ गई हैं। अधिनियम के अनुच्छेद छह के अंतर्गत पुत्री को रिहायशी घर में आवास का अधिकार प्राप्त है। लेकिन यह अधिकार उसी पुत्री को मिलता है जो अविवाहित हो या जिसे छोड़ दिया गया हो या जिससे पति अलग हो गया हो या फिर जो विधवा हो। इस तरह विपदा की मारी ऐसी विवाहित पुत्री को, जिसे कानूनी तौर पर छोड़ा न गया हो, या जो पति से कानूनी तौर पर अलग न की गई हो, अपने मां-बाप के आवासीय मकान में रहने का अधिकार नहीं होगा, भले ही वारिस की हैसियत से वह जायदाद की सहभागीदार हो। कलकत्ता उच्च न्यायालय ने एक मुकदमे में यह व्यवस्था दी कि विवाहित पुत्री अपने माता-पिता के मकान की वास्तविक काबिज नहीं

अधिनियम के अनुच्छेद छह के अंतर्गत पुत्री को रिहायशी घर में आवास का अधिकार प्राप्त है। लेकिन यह अधिकार उसी पुत्री को मिलता है जो अविवाहित हो या जिसे छोड़ दिया गया हो या जिससे पति अलग हो गया हो या फिर जो विधवा हो।

होती। यह मुकदमा पुत्री के उस आवेदन से जुड़ा है जिसमें बिजली की बहाली का आग्रह किया गया था। बिजली का कनेक्शन उसके ही भाई ने उस इमारत में कटवा दिया था जो उसके पिता का था और जिसमें वह रह रही थी। न्यायालय ने व्यवस्था दी कि भारतीय विद्युत अधिनियम 1910 के अनुच्छेद 12(6) के तहत वह लड़की वास्तविक काबिज नहीं कहला सकती, इसलिए उसे बिजली का कनेक्शन देना अनुचित होगा।

वैवाहिक कानून

वैवाहिक अधिकार दूसरा ऐसा पहलू है जो महिला दर्जे को जतलाने के लिहाज से महत्वपूर्ण है। व्यक्तिगत कानूनों की विविधता के कारण वैवाहिक संबंधों के लिए विभिन्न विधान हैं। इनमें विशेष विवाह अधिनियम, 1954 एक अपवाद है जो धर्म या समुदाय में भेद किए बिना सभी पर लागू है। इन कानूनों में हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि इसने महिलाओं को पूरी समानता प्रदान की है। पति-पत्नी दोनों को, विवाह-विच्छेद में सहायता के लिए जो आधार प्राप्त हैं उनसे कुछ अधिक पत्नी को दिए गए हैं। दंड-कानून के अंतर्गत एक विवाह को अनिवार्य माना गया है और द्विविवाह एक अपराध माना गया है। यह महत्वपूर्ण है कि 1955 से पहले कोई भी हिंदू पुरुष कितनी ही पत्नियां रख सकता था, हालांकि कुछ राज्यों में द्विविवाह के खिलाफ कानून मौजूद था। इसी तरह हिंदू विवाह अधिनियम बनने के बाद क्रूरता की संपूर्ण अवधारणा बदल गई है। अब पत्नी से यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि वह शारीरिक या मानसिक यातना बर्दाश्त करती रहे। कुछ वर्ष पहले तक इस व्यवहार को वैवाहिक जीवन की सामान्य बात मानकर नजरअंदाज़ कर दिया जाता था और पत्नी से परिवार के हित में इस सबको झेल जाने की अपेक्षा की जाती थी। अब क्रूरता की व्यापक व्याख्या के तहत दहेज की मांग भी एक अपराध माना जाता है, जिसके आधार पर पत्नी तलाक तक की हकदार है।

जहां तक मुस्लिम कानून का संबंध है पारिवारिक मामलों से जुड़े कायदे-कानूनों में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं हुआ है। मुस्लिम व्यक्तिगत कानून (शरीयत) प्रयुक्ति अधिनियम, 1937 और मुस्लिम विवाह विच्छेद अधिनियम 1939 से महिलाओं को बहुत सीमित अधिकार मिले हैं। मुस्लिम महिला (संबंध विच्छेद पर अधिकारों की रक्षा) अधिनियम 1986 अहमद खां बनाम शाह बानो मुकदमे में उच्चतम न्यायालय के निर्णय का परिणाम था। व्यक्तिगत कानून के बावजूद इसमें जाब्ता फौजदारी 1973 के अनुच्छेद 125 के अंतर्गत तलाकशुदा औरत को गुजारे के लिए बराबर के अधिकार दिए गए। लेकिन इससे तलाकशुदा मुस्लिम पत्नी किसी भी तरह अधिकारसंपन्न नहीं हो सकी। समान सिविल कोड के लिए संवैधानिक निर्देश देना तो दूर की बात राजनीतिक संवेदनशीलता और स्वार्थपरायणता उद्देश्य के प्रति वचनबद्धता पर हावी है। सरला मुद्गल बनाम भारत संघ मुकदमे पर व्यवस्था से ऐसे व्यक्तियों के द्विपत्नीत्व विवाह का पिछला दरवाजा बंद हो गया है जो एक-पत्नी विवाह कानून के तहत विवाह के बाद द्विपत्नी-विवाह की इजाजत देने वाला मजहब अपना लेते हैं। लेकिन इसके बावजूद कई शादियां, तेहरा तलाक और तलाक-बाद मुआवजा आदि की समस्याओं का समाधान नहीं हो पाया है।

इसी तरह लगभग डेढ़ सौ वर्ष पहले बने इसाई संबंध-विच्छेद कानून अर्थात भारतीय संबंध विच्छेद अधिनियम 1869 में कई भेदभावपूर्ण प्रावधान हैं जो लिंग भेद और मजहब दोनों पर आधारित हैं। भेदभावों को दूर करने के लिए कानून में परिवर्तन की बार-बार मांग की गई, सुझाव दिए गए और सिफारिशें की गई, लेकिन सब बेकार रहा। तलाक चाहने वाली इसाई महिलाओं के कष्ट कम करने के लिए चंद वाक्यांशों को हटा कर अदालतें कुछ प्रावधानों में एक तरह से संशोधन तो करती रही हैं फिर भी जब तक उच्चतम न्यायालय कोई व्यवस्था नहीं देता या संसद आवश्यक संशोधन नहीं करती, समस्या का समाधान नहीं हो पाएगा।

पारिवारिक संबंधों के क्षेत्र में भारतीय दंड संहिता (जो धर्मनिपेक्ष कानून है) के अनुच्छेद 498ए का जिक्र किया जा सकता है, जिसे घरेलू हिंसा से पत्नियों की रक्षा के लिए 1986 में एक संशोधन के द्वारा शामिल कर लिया गया। यह अनुच्छेद दहेज-उत्पीड़न के संबंध में ही नहीं है, बल्कि पति और/या ससुराल वालों के सभी तरह के बर्बर व्यवहार से संबंध रखता है।

दूसरी तरफ चर्चा की जा सकती है वैवाहिक बलात्कार के विसंगतिपूर्ण प्रावधानों की। दंड संहिता के अनुच्छेद 375 के अंतर्गत किसी पुरुष की अपनी पत्नी के साथ, जो 15 वर्ष से कम उम्र की न हो, मैथुन क्रिया बलात्कार नहीं है, भले ही वह मैथुन क्रिया का विरोध करे, जबकि सामान्य कानून के तहत 16 वर्ष से कम आयु की लड़की के साथ मैथुन क्रिया बलात्कार है, भले ही वह मैथुन क्रिया के लिए राजी हो। इस तरह अगर पत्नी 15 वर्ष की हो तो पति को बलात्कार का दोषी नहीं ठहराया जा सकता, यह विसंगतिपूर्ण है। विवाह की आयु बढ़ा कर 18 वर्ष कर दी गई है, लेकिन दंड संहिता में वैवाहिक

बलात्कार के प्रावधान में वही, यानी 1949 में निर्धारित 15 वर्ष की आयु ही चल रही है। पति को दी गई इस रियायत से बाल-विवाह और महिला-शोषण को बढ़ावा मिलेगा क्योंकि महिला को छोटी आयु में सहवास के लिए तैयार रहना पड़ेगा।

संरक्षण

बच्चों पर किसी महिला के नियंत्रण और अधिकार की सीमा से भी उसकी ताकत का अंदाजा लग जाता है। हिंदू अवयस्कता और संरक्षण अधिनियम 1956 और अभिभावक तथा आश्रित अधिनियम 1890 के अंतर्गत मां का अधिकार बाप से कम है। नर-नारी के बीच भेदभाव बरतने के कारण इन्हें उच्चतम न्यायालय में गीता हरिहरन बनाम रिजर्व बैंक मुकदमे में चुनौती दी गई। अदालत ने हिंदू अवयस्कता और हिंदू संरक्षण अधिनियम के अनुच्छेद छह में वर्णित शब्द 'बाद' के संबंध में यह व्यवस्था दी कि जरूरी नहीं है कि इसका मतलब 'जीवन काल के बाद' से ही हो, बल्कि इसका मतलब 'अनुपस्थिति में' से भी हो सकता है। इस तरह अगर पिता उदासीनता के कारण या माता-पिता के बीच आपसी समझ के आधार पर या शारीरिक या मानसिक अक्षमता के कारण या जहां मां और अवयस्क रह रहे हों, वहां न रह रहा हो, तब बाप को 'अनुपस्थित' समझा जा सकता है और मां 'संरक्षिका' के रूप में काम कर सकती है। इस व्याख्या से यह महत्वपूर्ण प्रश्न अनुत्तरित रह जाता है कि अगर माता-पिता साथ-साथ रहते हों और 'बाद' शब्द को दिए गए विस्तृत अर्थ के दायरे में पिता 'अनुपस्थित' न हो तब क्या स्थिति होगी।

रोजगार

काम की आजादी और आर्थिक सुरक्षा रोजगार के सर्वाधिक सहभागी तत्व हैं। हालांकि संविधान में काम के अधिकार को मूलभूत अधिकार के रूप में गारंटी दी गई है, फिर भी यह महत्वपूर्ण है कि इस अधिकार को सार्थक बनाने के लिए काम का वातावरण शोषणरहित और सुरक्षित हो। सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र तथा शहरी और देहाती क्षेत्रों में महिलाओं के अधिक संख्या में रोजगार हाथ में लेने के साथ-साथ उनके उत्पीड़न की घटनाएं भी बढ़ रही हैं। सामाजिक और आर्थिक बंदिशों के कारण महिलाएं अपने उत्पीड़न की शिकायत करने में संकोच करती हैं। अगर वे शिकायत कर दें तो हो सकता है कि उनकी नौकरी चली जाए या फिर पदोन्नति में बाधा पड़े। वे अपमान और उपहास का भी अधिक शिकार हो सकती हैं। दुर्भाग्य से महिलाओं के लिए गंभीर चिंता के इस विषय के संबंध में कोई कानून नहीं है। इस दिशा में दो सकारात्मक घटनाएं ध्यान देने योग्य हैं। ये दो घटनाएं हैं : भारतीय प्रशासनिक सेवा की एक महिला अधिकारी के साथ दुर्व्यवहार के लिए एक उच्च पुलिस अधिकारी पर मुकदमा और उच्चतम न्यायालय द्वारा कार्यस्थल पर सैक्स उत्पीड़न के खिलाफ व्यापक दिशा-निर्देश दिया जाना। सरकारी और निजी क्षेत्र के सभी संगठन, अस्पताल, विश्वविद्यालय और असंगठित क्षेत्र इन दिशा-निर्देशों की परिधि में आते हैं। जब तक कोई कानून पारित नहीं हो जाता, ये दिशा-निर्देश ही कानून की हैसियत रखेंगे।

काम की आजादी और आर्थिक सुरक्षा रोजगार के सर्वाधिक सहभागी तत्व हैं। हालांकि संविधान में काम के अधिकार को मूलभूत अधिकार के रूप में गारंटी दी गई है, फिर भी यह महत्वपूर्ण है कि इस अधिकार को सार्थक बनाने के लिए काम का वातावरण शोषणरहित और सुरक्षित हो।

सी.बी. मतुम्मा और नरगेश मिर्ज़ा कार्यस्थल पर स्त्री-पुरुष की बराबरी की न्यायिक चिंता की मिसाले हैं। उच्चतम न्यायालय ने उन सेवा नियमों को असंवैधानिक ठहरा कर रद्द कर दिया जिनमें विवाह और गर्भधारण को किसी पद पर नियुक्ति अथवा पद पर बने रहने के अयोग्य ठहराया गया था। इसी तरह 'माया देवी बनाम राज्य' मुकदमे में किसी प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में भाग लेने के लिए पति की मंजूरी लेने की बात को बराबरी और न्याय के मापदंडों के खिलाफ बताया गया। न्यायाधीश ने महिला के आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र होने के महत्व पर जोर दिया और कहा कि ''यह हमारी सामाजिक समस्याओं के समाधानों में एक है। राज्य को कामकाजी महिला को प्रोत्साहित करना होगा। वह उसे निरुत्साहित करने वाले हालात पैदा करके काम नहीं चला सकेगा। ऐसा करना संविधान के अनुच्छेद 46 के शब्दों और भावना के भी विपरीत है।'' 'नीरा माथुर बनाम जीवन बीमा निगम' मुकदमें में न्यायालय ने महिला कर्मचारियों के निजी समस्याओं को गुप्त रखने के अधिकार की रक्षा जीवन बीमा निगम को यह निर्देश देकर की कि सेवा-घोषणा फार्मों से 'रजोधर्म की अवधि', 'गर्भधारण' और 'प्रसव' जैसे निजी जानकारी से संबंधित स्तंभ हटा दिए जाएं।

महिलाओं को प्रभावी मातृत्व सुविधाएं दिए बिना उनका रोजगार अधिकार निरर्थक हो जाता। इसलिए मातृ-लाभ

(शेष पृष्ठ 37 पर)

स्वयंसेवी क्षेत्र की भूमिका महत्वपूर्ण

प्रदीप पंत

किसी एक वर्ष को महिला सशक्तिकरण के प्रति समर्पित करने के पीछे सरकार की मंशा यह है कि महिला मुद्दों पर इस एक वर्ष में अधिक ध्यान केंद्रित किया जाए और वे उपाय खोजे जाएं जिनसे महिलाओं के प्रति भारतीय समाज में व्याप्त भेदभाव में कमी आए। सरकार यह कार्य स्वयंसेवी संगठनों की सहायता से अधिक प्रभावी तरीके से कर सकती है, ऐसा लेखक का विश्वास है।

कम लोगों को स्मरण होगा कि भारत सरकार ने अपने सन 2000-2001 के बजट में घोषणा की थी कि वर्ष 2001 को 'महिला सशक्तिकरण वर्ष' के रूप में मनाया जाएगा। प्रश्न है कि किसी एक वर्ष को महिलाओं के सशक्तिकरण के प्रति क्यों समर्पित किया जाए? या यह कि क्या किसी एक वर्ष में समाज के उस वर्ग को सशक्त अथवा सबल बनाया जा सकता है जो युगों से शोषितों के वर्ग में शामिल है? संभवत: मंतव्य या मंशा यह है कि इस एक वर्ष में महिला मुद्दों पर विशेष रूप से ध्यान केंद्रित किया जाए और वे उपाय खोजे जाएं जिनसे आगामी वर्षों में महिलाएं सबल-सशक्त हों या कम से कम उनके प्रति भेदभाव में कमी आए।

वस्तुत: केवल भारत में ही नहीं, वरन संपूर्ण विश्व में महिलाएं भेदभाव, असमानता, दमन-शोषण आदि की शिकार रही हैं। लंबे समय तक स्वयं महिलाओं में भी यह चेतना नहीं थी कि उन्हें इन स्थितियों का प्रतिकार करना चाहिए। पहली बार संगठित रूप से प्रतिकार का स्वर उठा अमेरिका में, जहां कल-कारखानों में कार्यरत महिलाओं ने अपनी कार्य-दशाओं में सुधार और समान वेतन तथा सुविधाओं के लिए आंदोलन किया और लंबे संघर्ष के बाद सफलता प्राप्त की। धीरे-धीरे उनके आंदोलन की सफलता की गूंज अन्य देशों में भी सुनाई दी और अमेरिकी महिलाओं की सफलता का दिन 8 मार्च 'अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस' बन गया। भारत सहित अनेक देशों में इसे 'अंतर्राष्ट्रीय महिला सप्ताह' का रूप भी दे दिया गया लेकिन महिलाओं का शोषण कम नहीं हुआ। अमेरिका में ही एक बार फिर 'महिला मुक्ति' का आंदोलन छिड़ा और इसकी गूंज-अनुगूंज भी भारत सहित अनेक देशों में सुनाई दी। यह आंदोलन जिस तेजी से उठा, उसी तेजी से लुप्त भी हो गया। फिर अंतर्राष्ट्रीय-स्तर पर महिला दशक भी मनाया गया और संयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान में महिला प्रश्नों पर अनेक सम्मेलन हुए जिनकी परिणति 'बीजिंग कान्फ्रेंस' की सिफारिशों के रूप में हुई। लेकिन जैसा कि अक्सर होता है, सिफारिशें आमतौर पर सिफारिशें ही बन कर रह गई हैं और महिलाओं की स्थिति में कोई उल्लेखनीय सुधार नहीं हुआ है। कम से कम भारत के स्तर पर 'नारी तुम केवल अबला हो' तथा 'आंचल में है दूध और आंखों में पानी' वाली स्त्री छवि आज भी बरकरार है। तथ्य इसी बात की पुष्टि करते हैं।

भारत सरकार के महिला और बाल विकास विभाग द्वारा 14 नवंबर, 1999 को 'विश्व बाल दिवस' के अवसर पर 'चिल्ड्रन-इंडियाज़ स्ट्रैंग्थ' (बच्चे- भारत की शक्ति) नामक एक पुस्तिका प्रकाशित की गई थी। इस पुस्तिका में दिए गए कुछ आंकड़े इस प्रकार हैं:

- भारत में प्रति वर्ष 1,25,000 महिलाएं गर्भधारण के कारण या बच्चों के जन्म से संबद्ध किसी कारण से मौत का शिकार हो जाती हैं।
- प्रत्येक वर्ष 1 करोड़ 20 लाख लड़कियां

जन्म लेती हैं, लेकिन इनमें से 30 लड़कियां अपना 15वां जन्मदिन नहीं देख पातीं।

- 20 से 25 वर्ष के बीच की आयु वाली महिलाओं में से 50 प्रतिशत का विवाह 18 वर्ष की आयु में हो जाता है।
- 72 प्रतिशत गर्भवती ग्रामीण महिलाएं निरक्षर पाई गई हैं।
- कक्षा एक में प्रवेश लेने वाली प्रत्येक 10 लड़कियों में से केवल 6 ही पांचवीं कक्षा तक पहुंचती हैं।
- देश में 4,00,000 बाल वेश्याएं हैं। व्यावसायिक बाल वेश्यावृत्ति 8 से 10 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से बढ़ रही है।

महिला और बाल विकास विभाग ने ही इससे पूर्व एक पुस्तक प्रकाशित की थी जिसका शीर्षक था 'वूमैन इन इंडिया : ए स्टैटिस्टकल प्रोफाइल 1988'। इस पुस्तक के अनुसार 1987 तक भारतीय प्रशासनिक सेवा और अन्य समकक्ष सेवाओं में जहां पुरुषों की संख्या 15,993 थी, वहीं महिलाओं की संख्या केवल 994 थी। स्थिति आज भी कोई खास नहीं बदली है।

उपरोक्त तथ्यों से भारत में महिलाओं की स्थिति का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। साथ ही यह भी समझा जा सकता है कि उनके सशक्तिकरण की आवश्यकता क्यों है। इसलिए कि वे विषमताओं की शिकार हैं, उनके स्वास्थ्य की ठीक से देखभाल नहीं होती, उन्हें पढ़ने और आगे बढ़ने के पर्याप्त अवसर नहीं मिलते, उनके साथ भेदभाव होता है, उनमें से अनेक को असामाजिक गतिविधियों का शिकार होना पड़ता है, वे साधारण से लेकर उच्च पदों तक उतनी संख्या में नहीं जा पातीं, जितनी संख्या में पुरुष पहुंचते हैं। यही नहीं वे सामाजिक वर्जनाओं और कुरीतियों की भी शिकार रही हैं। पर्दा प्रथा, सती प्रथा आदि लंबे समय तक भारतीय समाज में प्रचलित रही हैं। उनके अवशेष अब भी हैं। विधवा विवाह को बुरी नजरों से देखा जाता रहा है। बाल विवाह आज भी देश के अनेक भागों में प्रचलित है। लड़कियों को प्राय: अनचाही संतान माना जाता है।

इन सब बातों ने, ऐसे अन्यायपूर्ण व्यवहार ने महिलाओं को अशक्त बना दिया—इतना अशक्त कि वे स्वयं अपने को पुरुष की तुलना में दोयम दर्जे का मानने लगीं। और जब कभी उन्हें समानता का दर्जा दिलाने या उनकी स्थिति बेहतर बनाने की बात होती है तो पुरुष वर्चस्व वाला हमारा समाज हर स्तर पर बाधाएं खड़ी करता है। इसका सर्वोत्तम उदाहरण संसद और विधानमंडलों में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत स्थान आरक्षित करने वाला बिल है जो आज तक पास नहीं हो सका, क्योंकि यदि यह बिल पास होकर कानून बन जाता है तो महिलाएं नीतिगत निर्णय लेने के स्थानों में पहुंच जाएंगी जो पुरुष आधिपत्य वाला समाज नहीं चाहता।

चाहे महिलाओं के आरक्षण का बिल हो या उनके स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार, भेदभाव मिटाने, शोषण रोकने आदि के मुद्दे—सभी मोर्चों पर सार्थक कार्रवाई से ही महिलाओं का सशक्तिकरण संभव है और यहीं पर भूमिका है गैर-सरकारी क्षेत्र की, जिसे वस्तुत: स्वैच्छिक या स्वयंसेवी क्षेत्र कहना बेहतर होगा।

चाहे महिलाओं के आरक्षण का बिल हो या उनके स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार, भेदभाव मिटाने, शोषण रोकने आदि के मुद्दे—सभी मोर्चों पर सार्थक कार्रवाई से ही महिलाओं का सशक्तिकरण संभव है और यहीं पर भूमिका है गैर-सरकारी क्षेत्र की, जिसे वस्तुत: स्वैच्छिक या स्वयंसेवी क्षेत्र कहना बेहतर होगा।

लोकतंत्र के चार स्तंभ माने गए हैं—विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका और प्रेस, जिसे आज हम 'मीडिया' कहने लगे हैं। लेकिन स्वयंसेवी संगठनों के माध्यम से काम करने वाले देश के सबसे बड़े संगठन केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड की अध्यक्षा श्रीमती मृदुला सिन्हा ने ठीक ही कहा है कि लोकतंत्र के वास्तव में पांच स्तंभ होते हैं और यह पांचवां स्तंभ है—स्वयंसेवी क्षेत्र, जो वस्तुत: लोकतंत्र का मध्यवर्ती स्तंभ है।

कहना न होगा कि किसी भी सरकार के लिए केवल अपने बल पर कार्य करना संभव नहीं होता। विशेषत: वंचित पीड़ित वर्गों के कल्याण और विकास की योजनाएं सरकार केवल अपने कर्मचारियों के माध्यम से अमल में नहीं ला सकती।

स्वयंसेवी संगठनों के मामले में सबसे बड़ी सुविधा यह है कि उनके माध्यम से कम खर्च में अधिक काम कराया जा सकता है। वहां नौकरशाही या लालफीताशाही नहीं होती। इसलिए काम को समय पर अंजाम दिया जा सकता है। सबसे बड़ी बात यह कि स्वयंसेवी संगठन जमीन से जुड़े होते हैं क्योंकि वे प्राय: उन्हीं लोगों के बीच से उठे होते हैं जिनके लिए काम करते हैं। हां, वहां भी कुछ हद तक भ्रष्टाचार या धन के दुरुपयोग की संभावना रहती है। अत: उनके काम पर निगरानी रखना जरूरी है। अक्सर ऐसे ही संगठनों के कारण स्वयंसेवी क्षेत्र को बदनामी झेलनी पड़ती है। लेकिन यदि 10 में से 2 संगठन अनुदान का दुरुपयोग करते हों, तो इस आधार पर संपूर्ण

स्वयंसेवी क्षेत्र को बदनाम करना और भ्रष्ट बताना अनुचित है। आज देश में ऐसे अनेक स्वयंसेवी संगठन हैं जो पूरे परिश्रम और समर्पित भाव से सेवा कार्य में संलग्न हैं। ऐसे संगठनों को ढूंढ निकालने में केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है क्योंकि उसके पास समस्त राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में समाज कल्याण सलाहकार बोर्ड हैं जो अपने सदस्यों और अधिकारियों के माध्यम से शहरों ही नहीं अधिकांशत: ग्रामीण, दुर्गम, पर्वतीय और आदिवासी अंचलों में महिला शिक्षा प्रसार, महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने, उन्हें व्यावसायिक प्रशिक्षण देने, महिलाओं के विरुद्ध अपराधों की रोकथाम और उनमें अपने-अपने समुदाय के प्रति चेतना लाने और सामुदायिक विकास में भागीदारी निभाने के लिए प्रेरित करने के कार्यक्रम चला रहे हैं।

आंध्र प्रदेश के एक गांव में महिलाओं का जनजाग्रति शिविर

अनेक स्वयंसेवी संगठन आज महिला सशक्तिकरण के कार्य में अत्यंत सार्थक भूमिका निभा रहे हैं, फिर चाहे यह कार्य बोर्ड तथा अन्य सरकारी तथा महिला विषयक कार्यक्रमों को क्रियान्वित करके किया जा रहा हो या फिर उनमें महिलाओं की स्थिति, उनकी सामाजिक महत्ता, सामाजिक और सामुदायिक विकास में उनकी भूमिका, पंचायतों में उनकी भागीदारी, पर्यावरण संरक्षण में उनके योगदान, उनमें शिक्षा प्रसार, व्यावसायिक प्रशिक्षण और उनकी आर्थिक आत्मनिर्भरता आदि की बात हो।

कहना न होगा कि निकट अतीत में देश के कई भागों में महिला आंदोलनों की सफलता में स्वयंसेवी प्रयासों अथवा पहल की उल्लेखनीय भूमिका रही है। यहां तीन उदाहरण देने पर्याप्त होंगे—एक, उत्तरांचल का 'चिपको आंदोलन' जो पेड़ों को काटने के विरुद्ध एक सशक्त अभियान था। यद्यपि इस आंदोलन में सुंदरलाल बहुगुणा और चंडी प्रसाद भट्ट के नाम अंतर्राष्ट्रीय-स्तर तक उभर कर आए किंतु उन्हें यह सफलता न मिलती यदि आंदोलन में महिलाएं भागीदारी न निभातीं। पेड़ों से पहले वही चिपकी थीं। उन्होंने ही ठेकेदारों को पेड़ों को काटने से रोका था। इस आंदोलन की सफलता ने स्वयं उन्हें आत्मविश्वास दिया और सबल बनाया। दूसरा सफल आंदोलन था आंध्र प्रदेश में 'अरक विरोधी आंदोलन'। चूंकि अरक के नशे से परिवार नष्ट हो रहे थे, इसलिए महिलाओं ने समूहबद्ध होकर इसके खिलाफ आंदोलन चलाया। इसी भांति तीसरा सफल आंदोलन मणिपुर में शराब के खिलाफ हुआ। इसमें भी शिरकत महिलाओं ने ही की।

इन आंदोलनों के पीछे सरकारी अनुदान लेने वाले संगठन रजिस्टर्ड नहीं थे, लेकिन ये अपने आप में महत्वपूर्ण ऐसे स्वयंसेवी प्रयास थे जिन्होंने महिलाओं को पंक्तिबद्ध और संगठित किया तथा प्रकारांतर से सबल व सशक्त बनाया। इन प्रयासों के लिए कोई सरकारी दान-अनुदान भी नहीं लिया गया। यहां यह बात इसलिए कही जा रही है क्योंकि आज स्वयंसेवी क्षेत्र में यह मानसिकता प्रबल हो रही है कि समाज सेवा के कार्य के लिए उन्हें सरकार आर्थिक सहायता दे। यहां यह भी बता दिया जाए कि गांधीजी ने जब स्वतंत्रता आंदोलन के समानांतर बुनियादी तालीम, स्त्री शिक्षा, शराबबंदी, कुष्ठ रोग निवारण, गंदी बस्तियों की सफाई, हरिजन उत्थान आदि रचनात्मक कार्यक्रम चलाए थे तो उन्होंने इसके लिए कोई सरकारी सहायता नहीं ली थी। दुर्भाग्यवश समाज सेवा की यह गांधीवादी भावना आज निरोहित होती जा रही है। सच तो यह है कि समाज सेवा आरंभ की जाए तो उसके लिए सहयोग और निजी स्रोतों से

आर्थिक सहायता की कोई कमी नहीं रहती। महिला सबलीकरण के क्षेत्र में तो यह और भी सच है। जरूरत है तो बस एक पहल की—उसी तरह की जैसी चिपको आंदोलन, अरक और शराब विरोधी आंदोलन में की गई जिनमें स्वयं महिलाएं और बहुत से पुरुष स्वयंसेवक बनते गए, स्वेच्छा से आते गए और जुड़ते गए।

महिला सबलीकरण के संदर्भ में स्वयंसेवा की इसी भावना को समझने और आत्मसात करने की जरूरत है। हमारे समाज में पुरुषों के अनुपात में महिलाओं की संख्या पिछले दशकों में निरंतर कम हुई है। वर्ष 1901 की जनगणना में यह अनुपात 1000:972 था जो 1991 में घटकर 1000:927 रह गया। सन 2001 के अस्थायी जनगणना आंकड़े और भी भयावह स्थिति की ओर इंगित करते हैं। पंजाब जैसे संपन्न राज्य में महिलाओं की संख्या बेतहाशा घटी है। यही हाल हरियाणा, चंडीगढ़, दिल्ली, गुजरात और महाराष्ट्र का है। गौरतलब है कि इन सब राज्यों में जन्म से पूर्व लिंग का पता लगाने वाले क्लीनिक बड़ी संख्या में खुल गए हैं। जाहिर है कि यदि गर्भ में लड़की हो तो उसे मार डाला जाता है। इस स्थिति से चिंतित होकर दो संगठनों 'इन्क्वायरी इन्टू हैल्थ एण्ड एलाइड थीम्स' के साबू जॉर्ज और 'महिला सर्वांगीण उत्कर्ष मंडल' ने उच्चतम न्यायालय में एक जनहित याचिका दायर की। 5 मई 2001 के 'टाइम्स आफ इंडिया' के प्रथम पृष्ठ पर इस याचिका का हवाला देते हुए खबर दी गई थी कि 'उच्चतम न्यायालय ने केन्द्र और राज्य सरकारों को निर्देश दिया है कि वे लिंग परीक्षण और चयन प्रक्रियाओं पर प्रतिबंध लगाने वाले वर्तमान कानून को कड़ाई से लागू करें।' चौंकाने वाली बात यह है कि अधिकांश स्थानों में भ्रूण में लिंग का पता लगाने वाले क्लीनिक पंजीकृत तक नहीं हैं।

बहरहाल, महिलाओं की संख्या इतने बड़े पैमाने पर कम होना एक भयावह सामाजिक असंतुलन का द्योतक है। इस हेतु स्वयंसेवी संगठन समाज में जनचेतना अभियान चला सकते हैं, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों, चिकित्सकों आदि के साथ मिलकर काम कर सकते हैं। दूसरे, उन्हें महिलाओं के बीच शिक्षा प्रसार के भगीरथ कार्य में जुटना होगा, क्योंकि शिक्षा एक ऐसा साधन है जो महिलाओं को एक ओर सामाजिक कुरीतियों और वर्जनाओं से मुक्त करा सकता है तो दूसरी ओर उन्हें आत्मनिर्भरता आदि के अवसर प्रदान कर सकता है। साथ ही शिक्षा उन्हें अपने परिवार और भावी पीढ़ी का जीवन सुखद बनाने में मदद कर सकती है। महात्मा गांधी ने इसी कारण कहा था कि एक स्त्री की शिक्षा समस्त परिवार की शिक्षा है। कारण कि स्त्री परिवार की धुरी होती है। तीसरे, स्वयंसेवी संगठनों को महिलाओं में व्यावसायिक दक्षता के विकास पर ध्यान केन्द्रित करना होगा, क्योंकि अब समय ऐसा आता जा रहा है जहां किसी न किसी हुनर में दक्ष व्यक्ति के जीवन में सफल होने की गुंजाइश है। चौथे, स्वयंसेवी क्षेत्र को ऐसे जागरुकता अभियान चलाने चाहिए जिनसे महिलाएं काम के बोझ से उबरें, समुचित टैक्नोलॉजी का फायदा उठाएं, अपने अधिकारों के बारे में जानें, पंचायतों और सामुदायिक विकास में अपनी भूमिका निभा सकें। पांचवीं और सबसे जरूरी बात यह है कि स्वयंसेवी क्षेत्र को महिलाओं के प्रति 'पुरुष मानसिकता' अपने को स्त्री से ज्यादा श्रेष्ठ समझने की मानसिकता को बदलने की दिशा में काम करना चाहिए। यह विचार पुरुषों के मन में सदियों से बैठा हुआ है कि स्त्रियां उनसे हीन हैं और इसी कारण वे स्त्रियों का शोषण करते हैं, उनके विरुद्ध अत्याचार करते हैं और उन्हें आगे नहीं बढ़ने देते। स्वयंसेवी क्षेत्र को पुरुषों के मन में यह बात लानी होगी कि स्त्री और पुरुष बराबर हैं और यदि पुरुष महिलाओं को बराबरी का दर्जा देंगे तो घर नामक सबसे छोटी इकाई से लेकर राष्ट्र नामक वृहद् इकाई तक प्रगति कर सकेगी। बहुत व्यापक योजनाएं बनाने के बजाय यदि स्वयंसेवी क्षेत्र अपने सीमित साधनों से इन चार-पांच मुद्दों पर आंशिक सफलता भी प्राप्त कर लेता है तो यह 'महिला सशक्तिकरण वर्ष' की बड़ी उपलब्धि होगी जो आने वाले वर्षों के लिए उदाहरण बन जाएगी। ❑

(श्री प्रदीप पंत केंद्रीय समाज कल्याण बोर्ड में संयुक्त निदेशक हैं।)

भारतीय महिला को अमेरिकी राष्ट्रपति सम्मान

भारतीय मूल की वैज्ञानिक डा. उषा वाराणसी को अमेरिका के 'प्रेसीडेंशियल रैंक अवार्ड' से सम्मानित किया गया है। सुश्री वाराणसी सिएटल स्थित 'नॉर्थवेस्ट फिशरीज साइंस सेंटर' की निदेशक हैं। यह प्रतिष्ठित पुरस्कार नए किस्म के तथा महत्वपूर्ण वैज्ञानिक अनुसंधान प्रयास का निदेशन करने के लिए दिया जाता है। डा. उषा ने मछलियों तथा अन्य सागरीय स्तनपायी जीवों पर तेल एवं अन्य प्रदूषकों के प्रभाव पर अपने अनुसंधान के सिलसिले में काफी ख्याति अर्जित की है। फिलहाल वे लुप्त होने का खतरा झेल रही सैलमन मछली को बचाने के वैज्ञानिक प्रयास में लगी हैं।

पंचायती राज द्वारा अधिकार सम्पन्नता

सुधा पिल्लै

संविधान के 73वें संशोधन के जरिए पंचायतों में महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था के परिणामस्वरूप इस समय लगभग 10 लाख स्त्रियां त्रि-स्तरीय ढांचे में सदस्य और अध्यक्ष पदों पर कार्यरत हैं। यह एक अच्छी-खासी संख्या है और निश्चित ही इससे हाल तक ठहरे ग्रामीण समाज में बदलाव आया है। महिलाओं का राजनीतिक सशक्तिकरण न केवल महिलाओं के विकास के लिए जरूरी है, बल्कि उनकी रचनात्मक क्षमता की सुलभता सामाजिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है और इसके बिना देश निरंतर विकास की उम्मीद नहीं कर सकता।

नब्बे के दशक के आरंभ तक भारत ने ग्रामीण समुदायों की जरूरतें एक ऐसे तरीके से पूरी करने की कोशिश की जिसमें ग्रामीणजन चुपचाप विकास के ऐसे प्रयासों को स्वीकार कर लेते थे, जिनकी योजना अधिकांशतया शहरी इलाकों में रहने वाले लोग बनाते थे। इसका नतीजा यह हुआ कि स्थानीय-स्तर पर पहल के सभी प्रयास दब कर रह गए। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के काल में शहरी इलाकों में चिकित्सा, प्रशासन, विज्ञान, कानून और कला के क्षेत्र में स्त्रियों ने प्रवेश किया, जबकि ग्रामीण स्त्रियों के जीवन में कोई भी परिवर्तन नहीं आया। संविधान के 73वें संशोधन द्वारा पंचायतों में महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था ने इस सबको बदल दिया।

अप्रैल, 1993 से प्रभावी यह संशोधन कई कारणों से इस देश की पंचायती राज व्यवस्था में विभाजक-रेखा सिद्ध हुआ है। इस संवैधानिक संशोधन की खास विशेषता यह है कि इसमें संविधान में ही 'प्रतिनिधित्व की गारंटी' निहित है। प्रतिनिधित्व की यह गारंटी हाशिए पर धकेले गए शुरुआती समूहों के लिए है, जिनमें से शायद सबसे बड़ा वर्ग महिलाओं का है। 73वें संविधान संशोधन के जरिए महिलाओं के लिए कम से कम एक तिहाई आरक्षण अनिवार्य हो गया है। आरक्षण केवल सदस्यों के स्तर पर ही लागू नहीं किया गया है, बल्कि यह भी तय किया गया है कि कम से कम एक-तिहाई अध्यक्ष महिलाएं हों। संशोधन को लागू हुए आठ साल हो गए हैं, और अब यह स्पष्ट है कि अगर सदस्यों के स्तर पर ही आरक्षण होता, तो परिवर्तन इतने गंभीर नहीं होते। चूंकि पंचायतों पर आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजना बनाने तथा विषयों की एक अच्छी-खासी व्यापक सूची के बारे में इन योजनाओं (अनुसूची X1 में निहित 29 विषय) और स्कीमों के क्रियान्वयन की जिम्मेदारी डाल दी गई है, इसलिए इससे निर्वाचित महिलाओं को गांवों में हालात को बदलने के एक अनूठे अवसर के साथ-साथ अपने निजी विकास और सशक्तिकरण का मौका मिला है। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पंचायतों को अधिकारसंपन्न बनाने के 73वें संविधान संशोधन के सभी प्रावधान स्त्रियों के सशक्तिकरण में मदद करते हैं।

सैंकड़ों अध्ययनों ने महिलाओं के लिए आरक्षण नीति के औचित्य की पुष्टि की है। बुनियादी निष्कर्ष यह है कि स्त्रियों ने असाधारण रूप से अच्छा काम किया है। महिलाओं की अध्यक्षता वाली कई पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी और नेतृत्व का न केवल जमीनी प्रशासन पर असर पड़ा है, बल्कि घरों से बाहर शक्ति और जिम्मेदारियां सम्हाल पाने की असमर्थता के बारे में कई भ्रांतियां

पंचायत चुनावों में शपथ लेती निर्वाचित महिला सदस्य

ग्रामीण समाज में बदलाव आया है। ऐसा नहीं है कि हर पंचायत में महिलाएं सफल हुई हैं लेकिन अधिकांश में महिलाएं सफल हुई हैं, और यही बात उत्साहवर्द्धक है।

कई भारतीय और विदेशी शोधकर्ताओं, राजनीतिक विश्लेषकों, गैर-सरकारी संगठनों और पत्रकारों ने होने वाले परिवर्तनों को दर्ज करते हुए निष्कर्ष निकाला है कि गांव के भीतर धन का बेहतर उपयोग हुआ है। पंचायतों का ध्यान राजनीतिक जोड़-तोड़ से हटकर पेयजल की व्यवस्था, स्कूली शिक्षा, स्वास्थ्य रक्षा और साफ-सफाई व ईंधन संबंधी समस्याओं से निपटने की ओर गया। दुख की बात यह है कि इन समस्याओं पर पंचायतों ने कभी ध्यान नहीं दिया और न ही इन पर चर्चा की तथा औरतें इन पंचायतों में होती ही नहीं थीं। इन रिपोर्टों को देखते हुए कि घटिया आहार, सुरक्षित पेयजल और साफ-सफाई के अभाव से उत्पन्न कुपोषण से भारी संख्या में भारतीय ग्रामीण औरतें और बच्चे पीड़ित हैं, प्राथमिकताएं बदलने के ठोस प्रभावों पर और जोर देना जरूरी नहीं है।

भी दूर हो गई हैं। इस तरह 73वें संविधान संशोधन के परिणामस्वरूप महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण का सामाजिक-राजनीतिक क्षेत्रों पर प्रभाव पड़ा। पहला प्रभाव तो ग्राम पंचायत-स्तर पर प्रशासन और सेवाएं प्रदान करने में स्पष्ट सुधार के रूप में सामने आया है, जिसका मुख्य कारण विशेष तौर पर लोगों की वास्तविक जरूरतों, अधिक पारदर्शिता, समस्तरीय सम्पर्कों पर अधिक निर्भरता और लोगों विशेषकर ग्राम समुदाय की महिला सदस्यों की भागीदारी पर ध्यान केन्द्रित करना था। दूसरा, इस संशोधन से एक ऐसे राजनीतिक माहौल का निर्माण संभव हुआ है, जिससे महिलाएं सामाजिक दर्जा और आत्मविश्वास हासिल करने तथा दमन की परंपरा की सदियों पुरानी जंजीरों को तोड़ने में सक्षम हो सकी हैं।

निर्वाचित महिलाएं अन्य महिलाओं तथा किशोरियों के लिए आदर्श बन गई हैं। उनके परिश्रम और उनकी सफलताओं ने शिक्षा की अभिलाषा को मजबूती प्रदान की है। रिपोर्ट बताती है कि रूढ़िवादी माता-पिता भी अब सपने देखने लगे हैं कि एक दिन उनकी पुत्रियां ग्राम समाज के मामलों में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेंगी।

इस समय लगभग 10 लाख स्त्रियां इस संविधान संशोधन द्वारा शुरू किए गए त्रि-स्तरीय ढांचे में सदस्य और अध्यक्ष के पद पर कार्यरत हैं। भारत जैसे बड़े देश में भी यह अच्छी-खासी संख्या है और निश्चित ही इससे हाल तक के ठहरे हुए

कई ऐसे मामलों की खबर है कि जैसे-जैसे सशक्तिकरण की भावना बलवती हुई है, महिला सरपंचों और सदस्यों ने शराबखोरी, घरेलू हिंसा और बाल विवाह जैसी कुछ सामाजिक बुराइयों से निपटना भी शुरू कर दिया है। ऐसे कुछ मामले नीचे दिए जा रहे हैं:

— महाराष्ट्र में एक महिला पंचायत सदस्य ने दहेज के मुद्दे पर चर्चा के लिए महिलाओं का एक शिविर आयोजित किया।
— चम्बा में दो ग्राम पंचायत प्रधानों ने शराब की दुकानें बंद करवाने में मदद की, जिनका ग्राम समुदाय पर अपराध का-सा शिकंजा था।
— एक महिला सरपंच ने एक करार पर हस्ताक्षर करके समाज के बुजुर्गों की बैठक में शराबखोरी पर अंकुश लगाने में सफलता प्राप्त की। इस करार में तय किया गया था कि

अगर कोई व्यक्ति नशे में पाया जाता है तो उसे जुर्माना अदा करना पड़ेगा और इसमें पत्नियों को इस बात के लिए प्रेरित भी किया गया था कि अगर उनके पति नशे में आएं, तो वे पंचायत को खबर करें।

— एक महिला सरपंच ने दहेज और शराबखोरी की समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित किया।

ये कुछ ऐसी महिलाएं हैं, जिनके बारे में लिखा गया है। जैसीकि उम्मीद थी, इन मुद्दों से निपटते हुए कई महिलाओं को न केवल ग्रामीण समाज के भीतर बल्कि अपने परिवार में कई तरह के आरंभिक विरोधों का सामना करना पड़ा। उम्मीद तो यह की जा रही थी कि इन संवेदनशील क्षेत्रों में दखल देते ही वे गांव के रुढ़िवादी और पुराने ख्यालों के लोगों को नाराज कर देंगी, लेकिन हैरानी की बात तो यह है कि इन दुर्जेय महिलाओं के लिए विकास कार्यक्रमों का क्रियान्वयन आसान नहीं रहा है।

कई का अनुभव था कि उन्हें संगठित भ्रष्टाचार का सामना करना पड़ा और जब वे नहीं थी, तब रात के अंधेरे में हुए गुप्त सौदों को झेलना पड़ा। कई मामलों में तो शुरुआत में उन्हें उनके पतियों या अन्य प्रभावशाली पुरुष संबंधियों की छाया के रूप में देखा गया। कइयों को संकोची और मौन रहने की गहराई तक जड़ जमाए रखने वाली अपनी आदतों पर काबू पाना पड़ा। सभी तो सफल नहीं हुई और ये समस्याएं अभी भी कई पंचायतों में घर बनाए बैठी हैं और यह स्थिति उन राज्यों में बेहद गंभीर है जहां महिलाओं का पारंपरिक निचला दर्जा तो है ही, साथ ही पंचायतों को बहुत ही कम अधिकार दिए गए हैं। ऐसे राज्यों में पुरानी व्यवस्था कायम है और पंचायतों को अधिकार देने और उन्हें लोगों के प्रति जवाबदेह बनाने में राज्य स्पष्टतया अनिच्छुक हैं।

सामान्यतया जिन विवशताओं के खिलाफ ग्रामीण महिलाएं संघर्ष कर रही हैं, वे हैरान कर देने वाली हैं। हमारे देश के कुछ हिस्सों में परिवार जितना संपन्न है, परिवार में पत्नी का दर्जा उतना ही कम है जिसके कार्य घंटे कभी-कभी 20 तक भी हो जाते हैं। कुछ राज्यों में महिलाओं को कानूनन जमीन के उत्तराधिकार से वंचित रखा गया है। पुरुषों के पक्ष में झुकी भूमि नीति के कारण पिछले दो दशकों में औरतों की गरीबी बढ़ी है, उनकी स्वास्थ्य की स्थिति अच्छी नहीं है तथा माताओं की मृत्यु-दर के आंकड़े अत्यधिक ऊंचे हैं। इसलिए एक सामान्य पंचायत महिला इन सब विवशताओं से ग्रस्त रहती है और पंचायत के लिए चुने जाने से उत्पन्न नई चुनौतियों का सामना करती है। उसका सशक्तिकरण आरंभ हुआ है और उसकी तार्किक परिणति तब होगी, जब असमान और अन्यायपूर्ण कानून और सामाजिक रिवाज खत्म हो जाएंगे। पंचायती राज ने ऐसे सशक्तिकरण की नींव रख दी है। ❑

(सुश्री सुधा पिल्लै ग्रामीण विकास मंत्रालय में संयुक्त सचिव, पंचायती राज हैं।)

(पृष्ठ 30 का शेष)

अधिनियम 1961 में महिलाओं को पूरे वेतन के साथ 12 सप्ताह का प्रसूति अवकाश और कुछ अन्य सुविधाएं देने का प्रावधान है। इस संदर्भ में दूरसंचार विभाग में कुछ वर्ष पहले तक लागू उस नियम का उल्लेख किया जा सकता है जिसके अंतर्गत कोई अविवाहित महिला कर्मचारी प्रसूति लाभ की हकदार नहीं थी। बाद में तत्कालीन कार्मिक राज्य मंत्री सुश्री मारग्रेट अलवा के हस्तक्षेप पर यह नियम वापस ले लिया गया। फरवरी 1986 को श्रम मंत्री ने निर्देश दिया कि कामकाजी महिलाओं की वैवाहिक स्थिति पर ध्यान दिए बिना सभी कामकाजी महिलाओं को जच्चा-बच्चा सुविधाएं दी जाएं।

महिला सशक्तिकरण के लक्ष्य को पाने की दिशा में विधायी और न्यायिक प्रावधानों का यहां संक्षिप्त विवरण दिया गया। यद्यपि कानून महिला सशक्तिकरण का एकमात्र अस्त्र नहीं है तथापि इसकी महत्वपूर्ण भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। कभी कानून बहुत बढ़िया होते हैं, लेकिन ढुलमुल क्रियान्वयन या फिर प्रतिगामी व्याख्या से उनका असर कुछ फीका पड़ जाता है। ऐसे भी मौके आते हैं जब कानून की उदार या प्रगतिशील व्याख्या और क्रियान्वयन उसकी कमी या अस्पष्टता को दूर कर देते हैं। सी.बी. मतुम्मा नरगेश मिर्जा और शाहबानो के मामले महिला सशक्तीकरण की दिशा में कानून और न्यायपालिका के सकारात्मक और प्रगतिशील दृष्टिकोण का बोध कराते हैं। दूसरी तरफ 'नरसिम्हा' और 'गीता हरिहरन' ऐसे उदाहरण हैं जब न्यायपालिका ने संपूर्ण न्याय दिलाने और महिला सशक्तिकरण के अहम मौके हाथ से गंवा दिए। निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि संपूर्ण कानून न्याय नहीं और संपूर्ण न्याय के लिए कानून आवश्यक नहीं है। महिला के कारगर सशक्तिकरण के लिए कानून और न्याय को एक-दूसरे का पूरक और सहायक बनाना होगा। इसके लिए अभी लंबा सफर तय करना है। ❑

(सुश्री कुसुम भारतीय विधि संस्थान, नई दिल्ली में शोध प्रोफेसर हैं।)

अपनी प्रत्येक हवाई यात्रा के दौरान
चाहे आप किसी भी एयरलाईन में यात्रा करें
आप हमेशा उड़ते हैं ए.ए.आई. के साथ

सुरक्षा सहित सेवा

एयरपोर्ट्स अथॉरिटी ऑफ इंडिया

हम सैन्य विमान–क्षेत्रों में स्थित 28 सिविल एन्क्लेवों सहित 11 अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डों, 112 घरेलू हवाई अड्डों की देखभाल के साथ–साथ संपूर्ण भारतीय हवाई क्षेत्र एवं इससे बाहर के सीमित हवाई क्षेत्र का भी प्रबंधन करते हैं।

''आपकी सुरक्षा हमारा दायित्व''

मानवाधिकार संरक्षण द्वारा अधिकारसंपन्नता

जे. भाग्यलक्ष्मी

भारत ने कानूनी व्यवस्था सहित महिलाओं का पूर्ण विकास और प्रगति सुनिश्चित करने के लिए अनेक उपाय किए हैं ताकि महिलाओं के लिए समानता के आधार पर मानवाधिकारों का उपयोग और उपभोग सुनिश्चित किया जा सके। हमारे देश में स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार और राजनीतिक एवं आर्थिक अधिकारिता के क्षेत्र में विशेष रूप से महिलाओं के लिए बनाए गए कार्यक्रमों के सकारात्मक परिणाम सामने आए हैं।

मानव इतिहास के संपूर्ण काल में सभी समाजों और संस्कृतियों में कुछ ऐसे अधिकार और सिद्धांत लागू रहे हैं जिनका न केवल सम्मान किया जाता था बल्कि उनका संरक्षण भी किया जाता था। इसी आधार पर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी मानवाधिकारों की आवाज बुलंद हुई। प्रत्येक मनुष्य को इन अधिकारों के उपभोग और संरक्षण का अधिकार है। विश्वभर में सभी क्रांतिकारी आंदोलनों ने यह स्पष्ट किया है कि मनुष्य के अधिकार अहरणीय (अहस्तांतरणीय) और पवित्र हैं। इस संबंध में दो महत्वपूर्ण घोषणाएं हैं अमेरिका की आजादी की घोषणा और फ्रांस की मनुष्यों और नागरिकों के अधिकारों की घोषणा। मानवाधिकारों की समकालीन संकल्पना को बीसवीं शताब्दी और दो विश्व युद्धों के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। मानव इतिहास में संयुक्त राष्ट्र का आविर्भाव एक युगांतरकारी घटना है।

मौलिक मानवाधिकार

संयुक्त राष्ट्र के घोषणा पत्र में मौलिक मानवाधिकार, मनुष्य की गरिमा एवं महत्व, स्त्री-पुरुष और छोटे-बड़े राष्ट्र के समान अधिकारों में पूर्ण विश्वास व्यक्त किया गया है। सार्वभौमिक घोषणा के बाद अन्य घोषणाएं की गईं। मनुष्य के कुछ नागरिक और राजनीतिक अधिकार हैं जो स्वतंत्रता को सर्वोच्च महत्व देते हैं। बाद में सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सुरक्षा से संबंधित अन्य अधिकार घोषित किए गए। हाल ही में मानवता के लिए खतरा बनी कुछ नई समस्याओं और मुद्दों के संदर्भ में कई अन्य मानवाधिकार उभरे हैं। ये पर्यावरण, संस्कृति और विकास के मुद्दों से संबंधित हैं। इन अधिकारों का संबंध समूहों और लोगों से है। इनमें शामिल हैं आत्मनिर्णय का अधिकार और विकास का अधिकार।

यद्यपि सभी मानवाधिकार विश्वव्यापी, अविभाज्य, एक-दूसरे पर आश्रित और एक-दूसरे से संबद्ध हैं', फिर भी कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जिनकी ओर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। एक ऐसा ही क्षेत्र महिलाओं और उनके अधिकारों का विकास है जिसकी तरफ अंतर्राष्ट्रीय समुदाय का ध्यान देना जरूरी है। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 18 दिसंबर, 1979 को महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार का भेदभाव समाप्त करने के समझौते को स्वीकार किया और यह 3 सितंबर, 1981 से लागू हो गया।

महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव

यहां पर 'महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव' का अर्थ ''लिंग के आधार पर महिलाओं पर किसी भी प्रकार का भेदभाव, बहिष्कार या बंधन लगाने से है जिसका प्रभाव या उद्देश्य, चाहे उसका वैवाहिक-स्तर जैसा भी हो, स्त्री-पुरुष को समानता के आधार पर प्राप्त अधिकारों को कमजोर करना या निष्प्रभावी बनाना हो और महिलाओं को उनके मानवाधिकारों और राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नागरिक या किसी अन्य क्षेत्र में मौलिक स्वतंत्रताओं के उपभोग या इस्तेमाल से वंचित करना हो।''

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए समझौतों

पर हस्ताक्षर करने वाले सभी देशों और पक्षों ने उपयुक्त उपाय करने का वचन दिया। इसमें कानून बनाने सहित पुरुषों के साथ समानता के आधार पर महिलाओं के समग्र विकास और प्रगति के सभी उपाय सुनिश्चित करना शामिल था।

ग्रामीण महिलाओं की समस्याएं

संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में ग्रामीण महिलाओं के समक्ष आने वाली समस्याओं और अपने परिवारों का अस्तित्व बनाए रखने में उनकी उल्लेखनीय भूमिका पर भी विचार किया गया। अत: इस बारे में सहमति हुई कि सम्मेलन में शामिल देश भेदभाव समाप्त करने के उपयुक्त उपाय करेंगे ताकि महिलाएं ग्रामीण विकास की सभी गतिविधियों में भाग ले सकें और उससे लाभ उठा सकें। ग्रामीण महिलाओं के लिए निम्नलिखित अधिकार सुनिश्चित किए गए:

क. सभी स्तरों पर विकास योजनाएं तैयार करने और उन्हें लागू करने की प्रक्रिया में शामिल करना;

ख. पर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाओं तक पहुंच, जिसमें परिवार नियोजन संबंधी समस्त सूचना, सलाह और सेवाएं शामिल हैं;

ग. सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों से सीधे लाभ प्राप्त करने की सुविधा;

घ. सभी प्रकार का प्रशिक्षण और शिक्षा पाने का अधिकार, इसमें औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा दोनों और कार्य संबंधी साक्षरता शामिल है। अन्य बातों के अतिरिक्त उनकी तकनीकी योग्यता बढ़ाने के लिए उन्हें सभी सामुदायिक और विस्तार सेवाओं के लाभ उपलब्ध कराना;

ङ. रोजगार या स्वरोजगार के जरिए समान आर्थिक अवसरों के लिए आत्मनिर्भर समूहों और सहकारिताओं का गठन;

च. सभी सामुदायिक गतिविधियों में शामिल होना;

छ. कृषि ऋण, विपणन सुविधाओं, उचित टेक्नोलोजी तक पहुंच और भूमि एवं भू-सुधारों और पुनर्वास कार्यक्रमों का लाभ समान रूप से मिलना सुनिश्चित करना और

ज. रहन-सहन संबंधी पर्याप्त सुविधाएं विशेष रूप से आवास, सफाई, बिजली एवं पानी की आपूर्ति, परिवहन और संचार सुविधाएं उपलब्ध होना।

भारतीय संविधान और मानवाधिकार

भारतीय संविधान में सभी मानवाधिकारों को शामिल किया गया है। प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, नीति-निर्देशक सिद्धांत मिलकर मानवाधिकारों की वैश्विक घोषणा और नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों के समझौतों तथा आर्थिक-सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकारों की भावना को व्यक्त करते हैं। संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है कि सभी भारतवासियों ने अपने समस्त नागरिकों को 'सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय', विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता, तथा व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने का सत्यनिष्ठा के साथ संकल्प लिया है। भारत सरकार ने पाया कि न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के घोषित अधिकारों के बावजूद महिलाएं तकरीबन सभी क्षेत्रों में पीछे हैं। यह समझने के बाद कि जब तक महिलाओं की उपेक्षा होगी, जो न केवल देश की कुल जनसंख्या का आधा भाग हैं बल्कि उस असल सार का प्रतिनिधित्व करती हैं जिसके चारों ओर समाज को नई दिशा मिलनी चाहिए, तब तक वास्तविक विकास जड़ें नहीं पकड़ सकता। भारत सरकार ने निर्देश दिए हैं कि सभी सरकारी प्रयासों में स्त्री-पुरुषों के बीच भेदभाव समाप्त करने पर जोर दिया जाए और इस प्रकार महिलाओं को संविधान में निहित भावना के अनुरूप वास्तव में बराबरी का दर्जा प्रदान किया जाए।

महिला-केंद्रित नीतियां

विभिन्न योजना दस्तावेजों में महिला-केंद्रित और महिलाओं से संबद्ध नीतियों के अलावा सरकार ऐसा वातावरण बना रही है, जिसमें महिलाओं के प्रति चिंता प्रकट होती है। वर्ष 1976 में स्वीकार की गई 'महिलाओं के लिए राष्ट्रीय कार्ययोजना' 1988 तक महिलाओं के विकास के एक मार्गदर्शी दस्तावेज के रूप में काम आई। इसी वर्ष महिलाओं के लिए राष्ट्रीय संदर्श योजना का (1988-2000) प्रारूप तैयार किया गया। यह एक दीर्घावधि योजना दस्तावेज था और इसमें महिलाओं के विकास के लिए व्यापक दृष्टिकोण अपनाया गया।

राष्ट्रीय पोषाहार नीति, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, राष्ट्रीय जनसंख्या नीति-सभी में महिला सशक्तिकरण के उद्देश्य को शामिल किया गया है। नौवीं योजना (1997-2002) में भी सामाजिक परिवर्तन और विकास के एजेंट के रूप में महिलाओं को अधिकार संपन्न बनाने का उद्देश्य निहित है। इनमें से कुछ रणनीतियां इस प्रकार हैं:

- महिलाओं के लिए संसद और राज्य विधानसभाओं में कम से कम एक तिहाई सीटें आरक्षित करने और निर्णायक-स्तर

पर उन्हें पर्याप्त प्रतिनिधित्व देना सुनिश्चित करने से संबद्ध अधिनियम को पारित करने के प्रयासों में तेजी लाई जाए।

- महिला केंद्रित और महिला संबद्ध क्षेत्रों में वर्तमान सेवाओं, संसाधनों, बुनियादी सुविधाओं और जनशक्ति को मिलाकर महिला सशक्तिकरण के लिए एक समन्वित दृष्टिकोण अपनाया जाए।
- 'महिला अवयव योजना' के लिए विशेष रणनीति अपनाई जाए ताकि अन्य विकास क्षेत्रों से कम से कम 30 प्रतिशत निधियां/लाभ महिलाओं को मिलें।
- महिलाओं को आत्मनिर्भर समूहों में संगठित करना और इस प्रकार महिलाओं को अधिकारसंपन्न करने की प्रमुख प्रक्रिया की शुरुआत करना।
- महिलाओं और लड़कियों के लिए 1998 की विशेष कार्ययोजना के तहत शिक्षा की सरल और समान सुविधाएं सुनिश्चित करना।
- महिलाओं को आधुनिक नए उद्यमों में प्रशिक्षित करना जो न केवल उन्हें लाभप्रद ढंग से व्यस्त रखेंगे बल्कि उन्हें आर्थिक रूप से स्वतंत्र और आत्मनिर्भर बनाएंगे।
- लघु और अत्यंत लघु क्षेत्रों में 'महिला उद्यमियों के लिए विकास बैंक' की स्थापना करके ऋण सुविधा उपलब्ध कराना।

ग्रामीण क्षेत्र में महिलाएं

ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं को 'महिलाओं के विरुद्ध सभी तरह के भेदभावों की समाप्ति' की संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन की भावना के अनुरूप अधिकारसंपन्न किया जा रहा है।

संविधान के (73वां संशोधन) अधिनियम 1992 में व्यवस्था है कि पंचायती राज संस्थाओं के सभी तीन स्तरों पर सदस्यों और अध्यक्षों की कुल संख्या के कम से कम एक तिहाई पद महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे। इस समय 6,81,258 महिलाएं ग्राम पंचायतों की निर्वाचित सदस्य हैं, 37,109 महिलाएं मध्य-स्तर और 3,153 जिला-स्तर पर पंचायत राज व्यवस्था में अपनी भूमिका निभा रही हैं।

पंचायतों को आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के विभिन्न कार्यक्रमों को संपादित करने की जिम्मेदारी सौंपी गई है। इस प्रकार पंचायतों की महिला सदस्य और अध्यक्ष कार्यक्रमों की योजना बनाने और उन्हें कार्यान्वित करने वाले तंत्र की अंग हैं।

ग्रामीण विकास मंत्रालय ने सभी 'गरीबी हटाओ' कार्यक्रमों में महिलाओं के लिए विशेष व्यवस्था की है। स्वर्ण जयंती ग्रामीण स्वरोजगार योजना (एस.जी.एस.वाई.) के तहत महिलाओं को आवर्ती निधि, बैंक ऋण और सब्सिडी (आर्थिक अनुदान) देकर सहायता दी जाती है और इस प्रकार उन्हें अपना रोजगार शुरू करने के अवसर प्रदान किए जाते हैं।

जवाहर ग्राम समृद्धि योजना में, जिसका उद्देश्य मांग-आधारित सामुदायिक बुनियादी ढांचा खड़ा करना और ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अतिरिक्त अवसर पैदा करना है, 30 प्रतिशत रोजगार के अवसर महिलाओं के लिए आरक्षित होते हैं।

इंदिरा आवास योजना में, जिसके अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी-रेखा से नीचे रहने वाले लोगों को आवास निर्माण के लिए सहायता प्रदान की जाती है, विधवाओं और अविवाहित महिलाओं को प्राथमिकता दी जाती है।

ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम के अंतर्गत महिलाओं को पेय जल आपूर्ति के लिए हैंड पंपों की मरम्मत करने और उनका रखरखाव करने का प्रशिक्षण दिया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं और बच्चों के विकास की योजना, जिसका स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना में विलय कर दिया गया है, ग्रामीण महिलाओं को सामाजिक विकास और आर्थिक स्वावलंबन के लिए संगठित करती है। राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम के अंग हैं: राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना, राष्ट्रीय जच्चा-बच्चा सहायता कार्यक्रम और राष्ट्रीय परिवार सहायता योजना, जो आर्थिक दृष्टि से कमजोर और आरक्षित महिलाओं की सहायता करती है।

सभी सरकारी कार्यक्रमों में स्वावलंबी वर्गों और सहकारिताओं को मजबूत बनाने पर जोर दिया जाता है जिससे रोजगार अथवा रोजगार के जरिए सभी को आर्थिक विकास के समान अवसर उपलब्ध हों। यह नीति 'महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभावों की समाप्ति' के सम्मेलन के उद्देश्यों के अनुरूप है।

भारत ने सम्मेलन में हुए समझौते की भावना को मूर्त रूप देने के लिए कई कदम उठाए हैं। कानून बनाने सहित महिलाओं का पूर्ण विकास और प्रगति सुनिश्चित करने और पुरुषों के साथ बराबरी के दर्जे पर मानवाधिकारों और मौलिक अधिकारों का उपभोग सुनिश्चित करने के लिए अनेक उपाय किए गए हैं। भारत में स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार और राजनीतिक एवं आर्थिक अधिकारिता के क्षेत्र में विशेष रूप से महिलाओं के लिए बनाए गए कार्यक्रमों के सकारात्मक परिणाम सामने आए हैं। ❑

(सुश्री जे. भाग्यलक्ष्मी स्वतंत्र पत्रकार हैं।)

अनुविनि

प्रस्ताव

राज्य स्तर की अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति निगमों तथा अन्य अधिकृत अभिकरणों के माध्यम से गरीबी रेखा की सीमा से दुगुने तक के आय वाले अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग के लिए आय एवं रोजगारोन्मुख अवसर उत्पन्न करने के लिए कृषि, यातायात, सेवा क्षेत्र, बागवानी, पशुपालन, लघु उद्योग जैसी व्यवहार्य योजनाओं को मंजूर करते हुए अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग को ब्याज की रियायती दरों पर वित्तीय सहायता प्रदान की जा रही है।

31 मार्च 2001 तक 1318.20 करोड़ रुपए की 2391 योजनाएं मंजूर की गई जिसमें निगम का 888.94 करोड़ रुपए का सहयोग रहा। 2.57 लाख लाभग्राहियों को लाभ देते हुए संचयी वितरण 728.89 करोड़ रुपए बढ़ा।

9692 अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लाभग्राहियों को लाभ देते हुए 230 प्रशिक्षण कार्यक्रम मंजूर किए।

कृपया विस्तृत विवरण हेतु सम्पर्क करें

अनुविनि nsfdc

राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति वित्त एवं विकास निगम

(भारत सरकार का उपक्रम)

8, बालाजी एस्टेट, गुरू रविदास मार्ग, कालकाजी, नई दिल्ली – 110019

फोन : 6002779–83 फैक्स : 6002777, 78

e-mail : nsfdc@satyam.net.in website : www.anuvini.org

अथवा

संबंधित राज्य के अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति वित्त निगम

Action

साहित्य की भूमिका

क्षमा शर्मा

पुरुष-प्रधान हमारे समाज में महिलाओं की आजादी का अर्थ माना जाता रहा है उसका 'पतित' अथवा 'कुलटा' होना। कुछ वर्ष पूर्व तक आजाद स्त्री को खलनायिका के रूप में दर्शन में हमारे सभी माध्यम एक सुर में बोलते रहे हैं। स्त्री-सशक्तिकरण के समाज में उभरते प्रश्नों से साहित्य निरपेक्ष नहीं रह सकता, ऐसी लेखिका की मान्यता है।

किसी बुजुर्ग के पांव छुइए और आशीर्वाद पाइए—'तेरे पूत बने रहें' या कि 'अखंड सौभाग्यवती रहो।' यानी कि 'जब मरो तो सुहागिन मरो।' यह जीवन का नहीं, मृत्यु का वरदान है।

इस प्रकार के वरदानों से हमारा प्राचीन साहित्य भरा पड़ा है। एक ओर तो नायिका भेद पढ़ाए जाते हैं और दूसरी ओर स्त्रियों से बचने के तरीके। 'औरत पर कभी भरोसा न करो' यह इन महान ग्रंथों का सूत्र- वाक्य है। स्त्रियों और दलितों से उस समय का समाज इतना आक्रांत था कि उन्हें पीटने का कोई तरीका न छोड़ता। चूंकि सारे विधान, सारी संहिताएं, सारे नियम, धर्म, कानून पुरुषों ने रचे हैं इसलिए हर कानून, हर रीति-रिवाज और परंपरा का पलड़ा उनके पक्ष में झुका हुआ है। माफ कीजिए, साहित्य भी इससे अछूता नहीं है। एक तरफ है भारतीय नारी जो त्यागमयी है, सती-सावित्री है, जिसके मुंह में जुबान नहीं है, जो सबसे पहले उठती है, दिन भर घर की चक्की में पिसती है, सबसे बाद में सोती है, जो कभी शिकायत नहीं करती और दूसरी तरफ है एक पश्चिमी नारी जो स्कर्ट पहनती है, सिगरेट पीती है, मर्दों के साथ क्लबों में नाचती है, एक नहीं बहुत सारे प्रेमी पालती है। इन दो स्टीरियोटाइप माडलों में हर कठिन परिस्थिति में विजय भारतीय नारी की होती है और पश्चिमी संस्कृति की प्रतीक नारी या तो किसी की गोली का शिकार होती है अथवा उस भारतीय नारी द्वारा झोंटा पकड़कर बाहर निकाल दी जाती है जिसके पति को इस 'कुलटा' द्वारा फंसा लिया गया था। जितनी दूर तक उसे घसीटा जाता है उतनी ही दूर और देर तक पश्चिमी संस्कृति पर भारतीय संस्कृति की विजय की तालियां आप सुन सकते हैं।

1970 तक के साहित्य में स्त्रियों के ये स्टीरियोटाइप बहुत खुले रूप में मौजूद हैं। बल्कि बड़े से बड़ा लेखक इस भावना से मुक्त नहीं रहा है। 'गोदान' में प्रेमचंद जिस तरह से 'धनिया' और 'मालती' का चरित्र चित्रण करते हैं वे भी पश्चिमी और भारतीय की बहस में उलझे दिखाई देते हैं। स्त्रीत्व की दृष्टि से देखें तो जयशंकर प्रसाद प्रेमचंद से कहीं अधिक प्रगतिशील दिखाई देते हैं। वे 'ध्रुवस्वामिनी' में पति के जीवित रहते ध्रुवस्वामिनी का विवाह उसकी पसंद के पुरुष चंद्रगुप्त से कराने की वकालत करते हैं।

यहां यह बात बहुत कड़वी लग सकती है लेकिन है सच कि पुरुष साहित्यकारों की नजर में 'परिवार' का दर्जा सबसे ऊंचा रहा है। इस परिवार को बचाने के अभियान में स्त्री का क्या बनता है, इसकी उन्हें खास परवाह नहीं रही। स्त्री के दुख उनकी आंखों से ओझल रहे हैं। स्त्री के अलग कोई दुख होंगे, उसका स्वास्थ्य कैसा है, बार-बार की संतानोत्पत्ति से उसकी देह पर क्या बीतती है—ये सवाल साहित्य से प्रायः गायब ही रहे हैं। पुरुष तो उस परिवार को बचाने में लगे हैं जिसके केंद्र में वे खुद हैं, जिसके द्वारा उनकी सत्ता चलती है। जब-जब स्त्रियों को मौका मिला है उन्होंने अपने ऊपर लादे गए गृहस्थी के जुए को उतार फेंका है और यह आज की बात

नहीं है। ढाई हजार साल पहले 'थेर गाथाओं' में बौद्ध भिक्षुणियों ने लिखा था :

एक औरत आजाद हुई, कितनी आजाद हूं मैं
अब चौके में हमेशा घिसते रहने से मुक्त
भूख की जकड़न से मुक्त,
खाली खनकते बर्तनों से मुक्त
उस आदमी की क्रूरता से मुक्त
वो, जो छाते बुनता है
अब शांत और धैर्यवान हूं मैं।
सारे काम और द्वेष से मुक्त
फैलते वृक्षों की छाया में जाती हूं मैं
और अपनी खुशी पर ध्यान टिकाती हूं।

एक दूसरी कविता है—

कितनी आजाद हूं मैं कितनी अनोखी है आजादी
तीन तुच्छ वस्तुओं से मुक्त
मुक्त ओखली, मूसल और अपने टेढ़े मालिक से
पुनर्जन्म और मृत्यु से मुक्त हूं मैं
जिस तमाम ने दबाए रखा था मुझे
जो सब अब दूर फिंक चुका है।

(अनामिका की पुस्तक ***'स्त्रीत्व का मानचित्र'*** से)

इन कविताओं को ध्यान से पढ़ें तो पाएंगे कि स्त्रियां जिस चीज को प्राप्त करके सर्वाधिक खुश रही हैं वह है 'आजादी'। आजादी सिर्फ अपने पति या पुरुष से नहीं, हर किस्म के बंधन से।

लेकिन मर्दों की दुनिया में स्त्री की 'आजादी' का अर्थ माना गया है उसका 'पतित' और 'कुलटा' होना। कुछ वर्ष पहले तक आजाद स्त्री को खलनायिका के रूप में दिखाने में हमारे सभी माध्यम एक सुर में बोलते रहे हैं। साहित्य भी इनमें एक रहा है।

प्राचीन साहित्य को उठाएं तो उसमें महान स्त्रियां वे दर्शाई गई हैं जिन्होंने मर्दों की सत्ता बनाए रखने के लिए बलिदान किया, सती हुई, युद्ध किए या जौहर में कूदी। ऐसी एक भी स्त्री आप ढूंढ कर नहीं ला सकते, प्राचीन और सत्तर तक के साहित्य में, जो मर्दों से मुक्त होकर महान कहलाई हो।

अरविंद जैन ने अपनी पुस्तक में ठीक लिखा है कि एक स्त्री तो वह है जो घर में रहती है, समय पर खाना पकाती है, बच्चे पालती है, रात में पति को संतुष्ट करती है; ऐसी ही स्त्री को महान कहा जा सकता है। दूसरी है साझी संपत्ति, जिसमें कालगर्ल, वेश्याएं आदि आती हैं। अक्सर इन्हें 'आजाद' स्त्री की कोटि में रखा जाता है। 'आजाद' स्त्री, माने 'कुलटा' स्त्री। पुरुष पचास औरतों के साथ संबंध रखकर अच्छा कहला सकता है, अपने घर लौट सकता है। स्त्री एक प्रेम करके भी चरित्रहीन कही जाती है और अफसोस कि स्त्री की इस छवि को बनाने में न धर्मशास्त्र पीछे रहे हैं, न साहित्य।

शोधकर्ता भले ही यह बताते रहें कि मानव जाति के कुछ महत्वपूर्ण पड़ाव महिलाओं की रचनात्मकता पर आधारित थे, मानव जाति को जानवर के स्तर से ऊपर उठाने में महिलाओं की महती भूमिका थी लेकिन इसे स्वीकारता कौन है। इतिहास ने, धर्म ने, साहित्य ने स्त्री को अपना जरखरीद गुलाम ही समझा है। विश्वास न हो तो श्री जयदयाल गोयंका की पुस्तक 'स्त्रियों के लिए कर्तव्य-शिक्षा' पढ़ लीजिए। पूरी पुस्तक में सर्वाधिक जोर स्त्रियों के पतिव्रता रहने और यौन शुचिता पर है। यह पतिव्रत धर्म उसे पति के जिंदा रहते ही नहीं, मरने के बाद भी निभाना है। स्त्री सबसे अधिक महत्वपूर्ण इसलिए है क्योंकि वह पुत्र को जन्म देती है, चूंकि कन्यादान सिर्फ एक ही बार किया जा सकता है, इसलिए विधवा विवाह नहीं किया जा सकता। इस पुस्तक को पढ़कर हम मर्दवादी विमर्श के उस एकांगीपन को जान सकते हैं जिसका कोड़ा औरत की पीठ पर पड़ा है।

इसीलिए 'थेर' गाथाओं की तरह जब-जब स्त्री को अपनी बात कहने का मौका मिला उसने निडरता से अपनी पीड़ा व्यक्त की। मीराबाई, सहजोबाई, जनाबाई, रामी, महादेवी अक्का, सुले सनकवा, रतनबाई, आतुकुरी मौल्ला, बहिनाबाई, गुलबदन बेगम, चौंद्रबौती, संथिया होनम्मा आदि वे स्त्रियां हैं जो पूरे भारत की हैं। अपनी-अपनी भाषा में इन्होंने अपने-अपने दुख व्यक्त किए। मीराबाई ने यदि राजमहल छोड़ा तो चौदहवीं-पंद्रहवीं सदी में गुजराती में गंगासती व रतनबाई और मराठी में जनाबाई ने समाज में व्याप्त रूढ़ियों के खिलाफ विद्रोह किया। जहां पुरुष रचनाकार इस लोक को छोड़कर परलोक के सपने देखते रहे वहां स्त्री रचनाकारों ने इसी लोक में व्याप्त रूढ़ियों के खिलाफ मोर्चा खोला क्योंकि इनका पहला शिकार वे ही होती थीं। बंगाल में रामी निम्न जाति में पैदा हुईं लेकिन उन्हें वैष्णव कवि चंडीदास से प्रेम हो गया। उनकी रचनाओं में उनकी प्रेमकथा के साथ-साथ समाज में फैली जातिप्रथा की भी घोर आलोचना मिलती है। इसी तरह जनाबाई शूद्र थीं। सात साल की उम्र से ही वह एक घर में दासी का काम करती थीं। उन्होंने कहा:

हाथ में मंजीरे, कंधे पे वीणा,
कौन मुझे रोकने की हिम्मत कर सकता है
साड़ी का पल्लू गिर जाता है।
हजार बातें बनाते हैं लोग
किंतु मैं जाऊंगी भरे बाजार में नि:संकोच, निडर।

इसी तरह चौंद्रबौती ने बांग्ला भाषा में रामायण लिखी। इसमें सीता के व्यक्तित्व की भूमि-भूरि प्रशंसा की गई जबकि राम को 'कमजोर' पति और 'डरपोक' बेटा कहा गया। चौंद्रबौती आजन्म अविवाहित रहीं। उन्होंने हमेशा ऐसे कानूनों का विरोध किया जो लोगों पर जुल्म ढाने वाले थे।

मध्यकाल में किसी स्त्री ने घर-बार नहीं छोड़ा लेकिन उसके दुख कम न हुए। क्या यह दुख की बात नहीं कि एक तरफ तो कहा जाता है कि कण-कण में भगवान है, दूसरी तरफ स्त्रियां सती की जाती हैं। दहेज के लिए अब भी औरतें मारी जाती हैं, जलाई जाती हैं। कहानियों-उपन्यासों में प्राय: महिलाओं की इस दुर्दशा की जिम्मेदार रूढ़ियों, परंपराओं, आदि का प्रखर विरोध नहीं किया जाता।

क्या यह दुख की बात नहीं कि एक तरफ तो कहा जाता है कि कण-कण में भगवान है, दूसरी तरफ स्त्रियां सती की जाती हैं। दहेज के लिए अब भी औरतें मारी जाती हैं, जलाई जाती हैं। कहानियों-उपन्यासों में प्राय: महिलाओं की इस दुर्दशा की जिम्मेदार रूढ़ियों, परंपराओं, आदि का प्रखर विरोध नहीं किया जाता।

सही मायनों में देखा जाए तो यह उन्नीसवीं सदी ही थी जब महिला समस्याओं की तरफ पुरुषों का ध्यान गया। राजा राममोहन राय ने सती प्रथा के खिलाफ मुहिम चलाई। ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने महिला शिक्षा और विधवा विवाह की वकालत की। गुजरात में दयानंद सरस्वती ने महिला शिक्षा के लिए अभियान छेड़ा। उसी तरह महाराष्ट्र में महादेव गोविंद रानाडे, बेहराम जी, केशव कर्वे, ज्योतिबा फुले, सावित्री बाई फुले, गोपालकृष्ण गोखले आदि ने महिला शिक्षा का जोरदार समर्थन किया। यद्यपि समाज सुधारकों के अपने अंतर्विरोध भी कोई कम नहीं थे लेकिन नवजागरण काल को हम महिला पक्षधरता का काल भी कह सकते हैं। इसीलिए साहित्य की कोटि में सिर्फ उपन्यास-कहानियों को न रखकर उन्नीसवीं सदी के समाज सुधारकों के लेखन को भी रखना चाहिए क्योंकि महिलाओं की आज की स्थिति के लिए पृष्ठभूमि उसी काल में तैयार की गई।

उन्नीसवीं सदी में ही भारत की महिलाओं के मन में वे प्रश्न उठने लगे थे जिनका जवाब पुरुष-प्रधान समाज के पास नहीं था। महिलाओं ने शिक्षा और राजनीतिक अधिकारों की मांग की। उधर सुधारवादी महिलाओं को कुछ अधिकार देना चाहते थे लेकिन महिलाओं की आजादी के बारे में वे एकमत नहीं थे।

1858 से 1905 के नवजागरण काल में बहुत-से पुरुष और महिला सुधारवादी उभरे। महिलाओं में उल्लेखनीय नाम हैं—सावित्री बाई फुले, पंडिता रमाबाई, स्वर्ण कुमारी देवी, आदि। सावित्री बाई फुले ने 1848 में पुणे में लड़कियों के लिए पहला स्कूल खोला। महिला सशक्तिकरण की दिशा में यह एक अनोखा प्रयास था। पंडिता रमाबाई ने भी नारी शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया। उनके पिता ब्राह्मण थे। उन्होंने अपनी बेटी को स्वयं पढ़ाया। रमाबाई ने दो महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं—'स्त्री धर्म नीति' तथा 'द हाई कास्ट हिंदु वुमैन।'

'उन्नीसवीं' सदी में ही कैलाशभाषिणी देवी ने 'भारतीय नारी' पर एक ऐतिहासिक निबंध लिखा।

कहने का अर्थ यह है कि महिलाओं ने जब कलम चलाई तब अपनी दुर्दशा के बारे में लिखा। शरतचंद्र ने स्त्रियों के बारे में जितनी करुणा और ममता से लिखा वह करुणा और ममता उस काल में हिंदी में जयशंकर प्रसाद निराला, महादेवी वर्मा आदि में मिलती है।

एक तरफ नवजागरण काल, दूसरी तरफ आजादी का संघर्ष। महात्मा गांधी ने आजादी की लड़ाई से महिलाओं को जोड़ा, उन्हें शक्ति दी। इसीलिए आजादी की लड़ाई में बड़ी संख्या में औरतें सामने आई। इनमें से कुछ के नाम हम जानते हैं, मगर हजारों को नहीं जानते, वे इतिहास के पन्नों में दर्ज हैं।

स्त्रियों की स्थिति को लेकर बीसवीं सदी के मध्य में जैसा महादेवी वर्मा ने लिखा, वैसा शायद किसी और ने नहीं लिखा। महादेवी तब स्त्रियों के बारे में जैसा लिख रही थीं वैसा तब अंग्रेजी भाषा में दिखाई नहीं देता। उनकी सारी औरतें बेहद कर्मठ, निम्न जाति की और विपत्ति की मारी हुई हैं, विधवा और परित्यक्ता हैं। इसीलिए समाज सिर्फ उन्हें लांछन देता है। लछमा पर जब लांछन लगाए जाते हैं तो महादेवी लिखती हैं—'एक पुरुष के प्रति अन्याय की कल्पना से ही सारा पुरुष समाज उस स्त्री से प्रतिशोध लेने को उतारू हो जाता है और

एक स्त्री के साथ क्रूरतम अन्याय का प्रमाण पाकर भी सब स्त्रियां उसके अकारण दंड को अधिक भारी बनाए बिना नहीं रहतीं।'

महादेवी की स्त्रियों के दुखों में जाति के आधार पर कोई कमी नहीं। चाहे उच्च जाति की स्त्रियां हों, चाहे निम्न जाति की भाभी, बिबिया, लछमा, मुन्नू की माई—दुख सहने में सब एक जैसी हैं। यह हिंदू समाज एक विधवा स्त्री के साथ क्या नहीं करता यह देखना हो तो 'भाभी' को, उस उन्नीस साल की युवती को देखना चाहिए।

उस उन्नीस वर्ष की युवती की दयनीयता आज समझ पाती हूं जिसके जीवन के सुनहरे स्वप्न गुड़िया के घरोंदे के समान दुर्दिनी की वर्षा में न केवल बह गए, वरन उसे इतना एकाकी छोड़ गए कि इन स्वप्नों की कथा कहना भी सम्भव न हो सका। सबसे कठिन दिन वे होते थे जब वृद्ध सेठ की सौभाग्यवती पुत्री अपने नैहर आती थी। उसके चले जाने के बाद भाभी के दुर्बल गोरे हाथों पर जलने के लम्बे काले निशान और पैरों पर नीले दाग रह जाते थे। पर उनके संबंध में कुछ पूछते ही वह गुड़िया की किसी समस्या में मेरा मन अटका देती थी।

आज स्त्रीत्ववाद जिस कन्यादान की रस्म को हेय दृष्टि से देखता है उसके बारे में सुभद्रा कुमारी चौहान का हवाला देते हुए महादेवी लिखती हैं—'जिस कन्यादान की प्रथा का सब मूकभाव से पालन करते आ रहे थे उसी के विरुद्ध उन्होंने (सुभद्रा कुमारी चौहान)' घोषणा की—''मैं कन्यादान नहीं करुंगी। क्या मनुष्य, मनुष्य को दान करने का अधिकारी है? क्या विवाह के उपरांत मेरी बेटी मेरी नहीं रहेगी। उस समय तक किसी ने और विशेषत: किसी स्त्री ने ऐसी विचित्र और परंपराविरुद्ध बात नहीं कही थी।'

आजादी के संघर्ष में गांधी जी, नेहरू जी, सुभाषचंद्र बोस आदि नेताओं के आह्वान पर जो हजारों स्त्रियां आंदोलन में आई उनमें बहुत-सी लेखिकाएं भी थीं। उन्होंने आज की स्त्री को आत्मनिर्भरता दिलाने और उसकी राह में बिछे कांटों को दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

मैडम भीकाजी कामा जिन्होंने फ्रांस से 'वंदेमातरम' अखबार निकाला। सरोजिनी नायडू भी आला दर्जे की कवियत्री थीं। कमला देवी चट्टोपाध्याय, लक्ष्मी सहगल, दुर्गा भाभी, प्रीतिलता, राजकुमारी अमृतकौर, नेली सेनगुप्ता, अनसूया साराभाई आदि न जाने कितनी महिलाएं थीं जिन्होंने महिलाओं की स्थिति सुधारने का प्रयास किया।

लेकिन आजादी के बाद महिलाओं में साक्षरता बढ़ी है। 1961 में दहेज विरोधी कानून बना। बाल विवाह पर रोक लगाने के लिए पहले ही 'शारदा एक्ट' बन चुका था। कल तक बलात्कार स्त्री के लिए सबसे बड़ा कलंक था। उसी की शिकार स्त्रियां अब प्रतिरोध करने लगी हैं। मूल्यवृद्धि विरोध से लेकर 'पर्यावरण बचाओ' आंदोलन तक की अगुआई महिलाएं करती हैं। एक तरफ महिलाएं शिक्षित, साक्षर, आत्मनिर्भर बन रही हैं तो दूसरी तरफ उन्हें गर्भ में ही मारने के लिए अमीनो सेंटेसिस और अल्ट्रासाउंड ईजाद कर लिए गए हैं। वर्ष 1987 में रूपकंवर सती हो जाती है। उससे पहले शाहबानो को गुजारा भत्ता देने के नाम पर कट्टरपंथियों की विजय होती है। सरकार प्रगतिशीलता का मुखौटा ओढ़े उनके सामने घुटने टेक देती है। यह वह दौर है जब 1975 के अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के बाद अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ही महिला दशक मनाया जाता है। बहुत-से महिला संगठन बनते हैं।

सत्तर वर्ष तक अमरीका की स्त्रियों ने वोट देने का अधिकार पाने के लिए लड़ाई लड़ी। यूरोप में जान स्टुअर्ट मिल पहले दार्शनिक थे जिन्होंने स्त्रियों के मताधिकार, शिक्षा और रोजगार के प्रश्नों पर उन्हें बराबरी का दर्जा दिलाने की बात कही। हमारे यहां बीसवीं सदी के दो दशकों ने स्त्री संबंधी प्रश्नों को बहुत आकुलता से छुआ। इन दशकों में हमारे यहां स्त्री संबंधी प्रश्न मुखर हुए।

लेकिन दुख है.... हां दुख है कि साहित्य जो अपने को समाज का मार्गदर्शक कहता है, उस साहित्य को कथित मुख्यधारा में स्त्रियों की समस्याओं की शिनाख्त नहीं है। वहां अभी तक स्त्रियों के नौकरी करने-न करने के औचित्य पर ही बहस छिड़ी हुई है। स्त्री संबंधी अधिकांश समस्याओं को पत्रकारिता या लेखों का विषय बनाकर एक ओर कर दिया जाता है।

सत्तर वर्ष तक अमरीका की स्त्रियों ने वोट देने का अधिकार पाने के लिए लड़ाई लड़ी। यूरोप में जान स्टुअर्ट मिल पहले दार्शनिक थे जिन्होंने स्त्रियों के मताधिकार, शिक्षा और रोजगार के प्रश्नों पर उन्हें बराबरी का दर्जा दिलाने की बात कही। हमारे यहां बीसवीं सदी के दो दशकों ने स्त्री संबंधी प्रश्नों को बहुत आकुलता से छुआ। इन दशकों में हमारे यहां स्त्री संबंधी प्रश्न मुखर हुए। सर्वेक्षणों ने पाया कि नौकरी करने वाली स्त्रियों की संख्या बढ़ी यानी कि उनके श्रम की पहचान हुई जबकि उससे पहले कृषि सैक्टर में लगी 85 प्रतिशत औरतों के श्रम की कोई शिनाख्त नहीं होती थी।

इस श्रमिक औरत को मध्यवर्गीय स्त्री के मुकाबले रचनाओं में कम जगह मिली।

लेकिन धीरे-धीरे स्त्री प्रश्न मुखरित होते गए। जाने-माने कवि रघुवीर सहाय बहुत पहले लिखते हैं—

पढ़िए गीता, बनिए सीता, फिर इन सबको लगा पलीता
निज घर-बार बसाइए, होएं कटीली, आंखें गीली
तबियत ढीली, घर की सबसे बड़ी पतीली
भरकर भात पकाइए।

कविता-कहानियों, उपन्यासों में स्त्रियां आती हैं। बड़ी संख्या में लेखिकाएं जैसे कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, पदमा सचदेव, मृदुला गर्ग, उषा प्रियवंदा, मृणाल पांडे, चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा, प्रभा खेतान, गीतांजलि श्री आदि महिला मुद्दों पर अपनी कलम चलाने लगती हैं। स्त्रियों संबंधी मुद्दों पर बहस होने लगती है। मीडिया में स्त्री की जगह बढ़ती हैं। पत्र-पत्रिकाओं के स्त्री विशेषांक निकलने लगते हैं। स्त्रियों की समस्याओं पर बहुत-सी लेखिकाएं कलम चलाने लगती हैं। मृणाल पांडे, मृदुला गर्ग, काव्यायनी, अनामिका आदि की स्त्री-विषयक पुस्तकें काफी चर्चित होती हैं। स्त्री विषयों पर पुरुष लेखक भी लिखते हैं। अरविंद जैन की पुस्तक 'औरत होने की सजा' के आठ संस्करण छपते हैं। उन्हीं की पुस्तक 'उत्तराधिकार बनाम पुत्राधिकार', और 'औरत, अस्तित्व और अस्मिता' भी रातोंरात बिक जाती हैं।

'औरत, अस्तित्व और अस्मिता' की भूमिका में प्रभा खेतान लिखती हैं कि ज्यादातर लेखिकाएं आलोचना की आपाधापी में पीछे छूट गई हैं। स्त्री की अपनी संस्कृति है। इतिहास में इसे भिन्न माना जाता रहा है लेकिन इसे अलग पहचान नहीं दी गई। चूंकि अलग से स्त्री शक्ति की सत्ता नहीं थी इसलिए स्त्री सत्ता को अलग पहचान ही नहीं मिली।

स्त्री सशक्तिकरण के जो भी प्रश्न समाज में प्रकट हो रहे हैं, साहित्य उनसे निरपेक्ष नहीं रह सकता। आज स्त्रियां लिंगभेद, महिला हिंसा पर रोक, निजी कानूनों में संशोधन, महिला स्वास्थ्य तथा आर्थिक दशा आदि में सुधार के मुद्दों से जूझ रही हैं। स्त्रियों को समाज की अग्रगामी धारा में जोड़ने में महिला आंदोलन ने प्रमुख भूमिका निभाई है। आज साहित्य में भी महिला आंदोलन द्वारा उठाए गए मुद्दे प्रमुखता से उभर रहे हैं। यह एक अच्छी खबर है। ❑

(सुश्री क्षमा शर्मा 'हिंदुस्तान टाइम्स' समूह की 'नंदन' पत्रिका में उप-संपादक हैं।)

G.S.

क्या पढ़ें? क्या छोड़ें?

ऐसी स्थिति में जब

(IAS/PSC के G.S. का अर्थ है, सूर्य और उसके नीचे दिखने सुनने और महसूस किये जाने वाला प्रत्येक तथ्य
Attend our free introductory classes to get complete strategical review of G.S. & your future approach

By R. Kumar & Team

Free introductory classes on 16th Aug. (for 2001) & 20th Dec., 2nd Jan. (for 2002 Mains cum pre.) other subjects-History (Mains) New Syllabus 16th Aug., लोक प्रशासन - 16th Aug. by Atul Lohia

IAS TUTORIALS

Above Aggarwal Sweets, Mukherjee Nagar, Delhi-9
Ph. **7651392**

हिन्दी शृंखला

स्पेक्ट्रम इंडिया एवं स्पेक्ट्रम बुक्स प्रा. लि.

ख्यातिलब्ध विद्वानों, प्रख्यात लेखकों एवं शोधार्थियों द्वारा अथक परिश्रम एवं पूर्ण मनोयोग से संकलित पुस्तकों की अमूल्य प्रस्तुति–संघ लोक सेवा, राज्य लोक सेवाओं एवं विभिन्न परीक्षाओं हेतु अपरिहार्य पुस्तकें।

- **स्पेक्ट्रम सामान्य अध्ययन 2001**
  यह पुस्तक संघ लोक सेवा आयोग एवं विभिन्न राज्य लोक सेवा आयोगों की प्रारंभिक परीक्षा हेतु तैयार की गई है।
  पुस्तक के प्रमुख आकर्षण–☆ सभी विषयों से संबंधित विस्तृत, संशोधित एवम् प्रमाणित तथ्यों का समाकलन ☆ अनावश्यक दुहराव की अपेक्षा तथ्यों का संक्षिप्त, व्यवस्थित एवम् सरल भाषा में प्रस्तुतीकरण ☆ विस्तृत एवम् क्रमबद्ध प्रश्नों (लगभग 10,000) में शब्दों के शुद्ध उच्चारण तथा गुणवत्ता का विशेष ध्यान ☆ संबंधित क्षेत्रों में मानचित्रों तथा चित्रों, नवीनतम तथ्यों एवम् आंकड़ों का समावेश ☆ स्वयं के अभ्यास हेतु नए प्रश्नों के समावेश सहित सात नमूना प्रश्न-पत्र ☆ विगत पांच वर्षों के उत्तर-सहित प्रश्न-पत्र ☆ निश्चित तर्कपूर्ण तथ्य ☆ सम्मिलित प्रश्न ☆ वस्तुनिष्ठ प्रश्न ☆ क्रमबद्ध रूप से व्यवस्थित ☆ मानचित्र: भौगोलिक एवम् ऐतिहासिक
  मूल्य 595 रु.
- **भारतीय इतिहास (पूर्णतया संशोधित षष्टम संस्करण)**
  यह पुस्तक संघ लोक सेवा आयोग, विभिन्न राज्य लोक सेवा आयोगों एवं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की परीक्षाओं में निश्चित सफलता हेतु एक सम्पूर्ण ग्रंथ है। (नये पाठ्यक्रमानुसार) मूल्य 340 रु.
- **सांख्यिकी विश्लेषण, ग्राफ एवं आरेख**
  सामान्य अध्ययन (मुख्य परीक्षा) के द्वितीय प्रश्न-पत्र के अंतर्गत सांख्यिकी के प्रश्न पूछे जाते हैं। इनसे संबंधित सामग्री को इस पुस्तक में काफी सरल एवं ग्राह्य शब्दों में संकलित किया है। साथ ही, गत वर्षों के दौरान पूछे गये प्रश्नों का हल भी दिया गया है। मूल्य 100 रु.
- **निबन्ध बोध (पूर्णतया संशोधित सप्तम संस्करण)**
  इस पुस्तक में निबन्धों को सर्वांगपूर्ण, अद्यतन जानकारियों से पूर्ण, सुरुचिपूर्ण एवं रोचक बनाने की पूरी कोशिश की है। विषय-विविधता भी बनाए रखने का हरसंभव प्रयास किया है। मूल्य 125 रु.
- **भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी (षष्टम संशोधित संस्करण)**
  भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विभिन्न क्षेत्रों का संक्षिप्त शब्दों में विशद् वर्णन। मूल्य 140 रु.
- **राजस्थान: एक समग्र अवलोकन**
  यह पुस्तक राज्य से संबंधित सम्पूर्ण जानकारियों को समग्रता के साथ प्रस्तुत करती है। मूल्य 70 रु
- **समसामयिकी 2001**
  यह पुस्तक सितंबर 2000 से मार्च 2001 तक की सभी महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय घटनाओं का विश्लेषणात्मक अवलोकन करती है। मूल्य 180 रु.
- **भारतीय राजनीतिक व्यवस्था (पूर्णतया नूतन)**
  संविधान की पूर्ण व्याख्या सहित भारत की सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था का सूक्ष्म एवं विशिष्ट वर्णन। मूल्य 140 रु.
- **आधुनिक भारत का इतिहास**
  इस पुस्तक में भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष के साथ ही आधुनिक भारत के अन्य विशिष्ट पहलुओं का संकलन एवं विश्लेषण किया गया है। मूल्य 140 रु.
- **सामान्य ज्ञान व सामान्य विज्ञान वस्तुनिष्ठ अभ्यास पुस्तिका**
  यह पुस्तक विशेष रूप से आर.ए.एस./आर.टी.एस. संयुक्त (प्रारम्भिक) परीक्षा के लिए उपयोगी है। मूल्य 60 रु.
- **विश्व इतिहास (1300 ई. से 1945 ई.)**
  संघ लोक सेवा आयोग की मुख्य परीक्षा एवं विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों का सम्पूर्ण समाकलन। मूल्य 145 रु.
- **ऐतिहासिक मानचित्रावली**
  भारतीय इतिहास से संबंधित विभिन्न क्षेत्रों की टिप्पणी और उनका संतुलित मानचित्रांकन। मूल्य 65 रु.
- **हिमाचल प्रदेश : एक समग्र अवलोकन**
  हिमाचल प्रदेश लोक सेवा आयोग की मुख्य परीक्षा के लिए विशेष सामग्री। मूल्य 55 रु.

आगामी

- **भारतीय कला एवं संस्कृति**
  इस पुस्तक में भारतीय कला एवं संस्कृति पर प्रकाश डाला गया है।
- **भारतीय अर्थव्यवस्था**
  इस पुस्तक में भारत में योजना और आर्थिक विकास, आर्थिक और व्यापार संबंधी विषय, विदेशी व्यापार, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक, विश्व व्यापार संगठन आदि पर प्रकाश डाला गया है।
- **भारत का भूगोल**
  इस पुस्तक में भारत के भौतिक, आर्थिक और सामाजिक भूगोल पर प्रकाश डाला गया है।

पाठकों से अनुरोध है कि हमारे प्रकाशन की पुस्तकें खरीदने से पहले 'स्पेक्ट्रम इण्डिया' का होलोग्राम अवश्य देखें। क्योंकि बाजार में हमारी पुस्तकों की नकली प्रतियां बिक रही हैं, जो कि न तो संशोधित हैं, न ही परिवर्द्धित हैं।

We also have English books. Ask for free catalogue.

FREE REGD. POSTAGE IF FULL AMOUNT IS SENT ☛ VPP ORDERS ARE NOT ACCEPTABLE
ONLY DD/MO ACCEPTED IN FAVOUR OF

SPECTRUM BOOKS PVT. LTD

(Publishers, and Distributors of Books published by SPECTRUM INDIA)
C2D 61A Janakpuri, New Delhi-110 058
Ph. 5551181, 5523824 • Telefax : 91-11-5611640
e-mail : spectrumindia@vsnl.com • www.spectrum-ind.com

समानता के अधिकार की भावी दिशा

लीना मेहेंदले

महिला सशक्तिकरण का अर्थ क्या है? हम कब कहेंगे कि महिला सबल हो गई? लेखिका का विचार है कि इस प्रश्न की परख इस बात से की जानी चाहिए कि क्या नारी भयमुक्त होकर, सम्मान खोए बगैर, जिस लक्ष्य को पाना चाहती है, उसके लिए प्रयास कर सकती है और अपने गंतव्य तक पहुंच सकती है, अथवा नहीं। यही सबलता और सुयोग्यता महिला सशक्तिकरण की असली पहचान है।

अपनी विद्यार्थी अवस्था के दिनों से मैं इसे सौभाग्य मानती रही हूं कि मेरा जन्म ऐसे देश में हुआ जो स्वतंत्र है और जहां पढ़ाई पर कोई रोक नहीं है। मुझे खुशी है कि तब या आज भी अपने महिला होने की बाबत कुछ विचार करने की आवश्यकता मुझे नहीं जान पड़ी।

कई वर्षों पश्चात मैंने महसूस किया कि शिक्षा पाना और बराबरी का हक पाना कितना आनंददायक हो सकता है। तब से भारतीय संविधान के प्रति मेरी आस्था बढ़ी है क्योंकि हमारा संविधान हर नागरिक को समानता का हक देता है। किसी भी नागरिक के साथ धर्म, जाति, वंश, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव या पक्षपात नहीं किया जा सकता। मेरे विचार में सशक्तिकरण की पहली शर्त यही है जो संविधान में ही प्रदत्त है।

स्वतंत्रता पूर्व आजादी की लड़ाई में क्रांति और अहिंसा दोनों रास्तों पर महिलाओं ने पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर योगदान दिया। आजाद हिंद सेना की कैप्टन लक्ष्मी हों या दुर्गा भाभी, कस्तूरबा गांधी हो या कमला नेहरु, ये नाम उसी आदर से लिए जाते रहे हैं जैसे अन्य स्वतंत्रता सेनानियों के। इन्हीं वर्षों में विवेकानन्द, दयानंद सरस्वती, सुब्रामण्यम भारती, सावित्रीबाई फुले और महात्मा गांधी जैसे विचारकों ने समाज में महिलाओं की स्थिति सुधारने के प्रयास किए। इन दोनों कारणों के फलस्वरूप संविधान के रचनाकारों ने भेदभाव रहित लोकतंत्र की रचना की जिसमें समानता के ध्येय को सर्वोपरि रखा गया और महिलाओं को आगे बढ़ाने और उन्हें मौका देने के लिए विशेष प्रावधान किए गए।

स्वतंत्रता के अगले चरण में पंचवर्षीय योजनाओं में 'महिला विकास' की दृष्टि से कई कार्यक्रम बनाए गए। निर्णय-प्रक्रिया में महिलाओं का सहभागी होना आवश्यक माना गया। इसका एक उदाहरण देखा जा सकता है कि सन 1960 में बने महाराष्ट्र के जिला परिषद अधिनियम और सहकारिता अधिनियम में। दोनों में यह प्रावधान है कि यदि चुनावों में कोई महिला प्रतिनिधि जीत कर न आए तो कम से कम दो महिला प्रतिनिधियों को नामजद करके लिया जाएगा। राजनैतिक क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता पर देशव्यापी निर्णय तब हुआ जब अस्सी के दशक में संविधान संशोधन के माध्यम से ग्राम पंचायतों में चुनाव प्रक्रिया पुनर्स्थापित करते हुए उसमें महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था की गई। 'महिला सशक्तिकरण' शब्द का प्रयोग सरकारी तंत्र में हाल में ही शुरू हुआ है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सरकारी योजनाओं की सोच पहले 'महिला-विकास', फिर 'महिला सहभाग' की राह चलकर अब 'महिला सशक्तिकरण' तक आ पहुंची है। यह हमारी मानसिकता के परिपक्व होने का उदाहरण माना जा सकता है।

महिला सशक्तिकरण का अर्थ क्या है? हम कब कहेंगे कि महिला सबल हो गई? मेरे विचार से इस प्रश्न की परख इस बात से की जानी चाहिए कि

क्या नारी भयमुक्त होकर, सम्मान खोए बगैर, जिस लक्ष्य को पाना चाहती हो, उसका प्रयास कर सकती है और अपने गंतव्य तक पहुंच सकती है। उसे संचार का हक हो, सुरक्षा मिले, आर्थिक निर्भरता समाप्त करने के पर्याप्त साधन उपलब्ध हों, उसकी इच्छा-अनिच्छा एवं सुझावों की परिवार, समाज व देश के स्तर पर कदर हो, उसे अपनी योग्यता बढ़ाने का अवसर मिले, धन-संपत्ति में हक मिले, रोज-रोज के एकरस, उबाऊ तथा कमर-तोड़ कामों से राहत मिले, देश की प्रगति तथा देश का गौरव बढ़ाने में सहयोग का पूरा अवसर हो। संक्षेप में यह कहें कि समाज रूपी रथ के दो पहियों में एक पहिया अगर नारी है, तो उसे भी उतना ही सबल और सुयोग्य होना आवश्यक है जितना पुरुष है। यही सबलता और सुयोग्यता महिला सशक्तिकरण की असली पहचान है।

सशक्तिकरण एक मानसिक अवस्था है जो कुछ विशेष आंतरिक कुशलताओं और सामाजिक परिस्थितियों पर निर्भर है। इनमें प्रमुख हैं—

1) निर्भयता जिसके लिए समाज में कानून और सुरक्षा का होना आवश्यक है।

2) रोजाना के नीरस, उबाऊ और कमरतोड़ कामों से मुक्ति।

3) आर्थिक आत्मनिर्भरता एवं उत्पादन क्षमता।

4) देशाटन की सुविधा तथा गतिशील वाहनों पर काबू।

5) निर्णय का अधिकार।

6) सत्ता एवं संपत्ति में पुरुषों के साथ बराबरी का हक।

7) ऐसी शिक्षा जो औरत को उपरोक्त बातों के लिए तैयार करे।

सबसे पहले हम महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों का विश्लेषण करें। पिछले पचास वर्षों में जो प्रमुख समस्या तेजी से उभरी है वह है औरत के जन्म लेने के अधिकार का हनन। पहले नवजात स्त्री-शिशु को मार देने की कुप्रथा से चली यह समस्या अब गर्भ-लिंग परीक्षा और स्त्री-भ्रूण-गर्भपात से भी आगे बढ़कर संतानोत्पत्ति के लिए 'पुरुष-लिंग के चुनाव और निर्धारण' तक पहुंच गई है। इसकी पर्याप्त झलक सन 2001 के जनगणना के आंकड़े देते हैं जो बताते हैं कि 0-6 आयु वर्ग में प्रति हजार पुरुष-शिशुओं की तुलना में स्त्री-शिशु संख्या पिछले बीस वर्षों में लगातार घटती हुई, 962 से 927 पर आ पहुंची है।

जन्म लेने के हक का मुद्दा कुछ अन्य मुद्दों से भी जुड़ा है जिनमें पहला है दहेज हत्या और दहेज अत्याचार का। इनकी संख्या और निर्ममता के जो विवरण सामने आ रहे हैं, वे चिंताजनक हैं। एक वर्ष में पुलिस करीब 5000 दहेज हत्याएं दर्ज करती है और करीब 31000 दहेज अत्याचार। इन्हीं के साथ-साथ परित्यक्ता महिलाओं की, आपसी सहमति से तलाक की और पत्नी के होते दूसरी शादी करने की घटनाओं में वृद्धि हो रही है। सहमति-तलाक के अधिकांश मामलों में औरत अपने ऊपर हो चुके अत्याचारवश मजबूरी में यह फैसला लेती है। परित्यक्ता महिलाओं के गुजारा-भत्ते के मामले भी लगातार बढ़ रहे हैं और अनुमान है कि ऐसे पांच लाख से भी अधिक मुद्दे न्यायालय में लम्बित हैं।

'परिवार' की संकल्पना भारतीय समाज की परिचायक और प्रातिनिधिक मानदण्ड रही है। उपरोक्त आंकड़े धीरे-धीरे उसी के अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह लगा रहे हैं। यदि अपने ही घर में औरत असुरक्षित, भयग्रस्त या तनाव-ग्रस्त है तो उसके सशक्तिकरण की बात तो बहुत दूर रह जाती है।

घर के बाहर महिला सुरक्षा का प्रश्न भी चिंताजनक बन गया है। देश भर में एक वर्ष में करीब 12,000 बलात्कार की घटनाओं के साथ साथ अगुवा करने की 13,000, अन्य यौन प्रताड़ना की 26,000, और छेड़छाड़ की 11,000 घटनाएं दर्ज हो रही हैं। दर्ज होने वाले इन एक लाख के करीब अपराधों की बाबत पुलिस का मानना है कि विभिन्न सामाजिक और आर्थिक कारणों के चलते महिलाओं के विरुद्ध घटने वाले अपराधों में से केवल दस से पच्चीस प्रतिशत ही दर्ज हो पाते हैं। जो दर्ज होते हैं, उनकी छानबीन, अदालतों में पेशी और सुनवाई प्रक्रिया में जानलेवा विलम्ब है और इतनी त्रासदी है कि वही अपने आप में एक अत्याचार बन जाता है। अपराध की शिकार महिला इन त्रासदियों को झेल भी ले तो भी केवल 15 प्रतिशत अपराधियों को सजा मिल पाती है, और महिला को न्याय से वंचित ही रहना पड़ता है।

व्यक्तिगत अपराधों के अलावा बड़े पैमाने पर महिलाएं सामूहिक और संगठित अपराधों की भी शिकार बन रही हैं। सामूहिक बलात्कार, छोटी बच्चियों का बलात्कार या यौन शोषण, उन्हें वेश्यावृत्ति में लगाना, संगठित गिरोहों द्वारा स्त्रियों की देह व्यापार के लिए खरीद-बेच, पंचतारांकित माहौल में कॉर्ल-गर्ल के बढ़ते अपराध, और साथ ही जलगांव वासनाकांड जैसी घटनाएं घट रही हैं जिनमें छोटे-छोटे लालचों में फंसाकर, युवतियों की अनुचित तस्वीरें खींचकर उसके माध्यम से उन्हें ब्लैकमेल कर उनका यौन-शोषण किया गया। ग्रामीण महिला की विडम्बना और अधिक है। गांव की गुटबाजी में एक समूह द्वारा दूसरे समूह को 'सजा देने के लिए' उक्त समूह की

महिलाओं पर सामूहिक अत्याचार या किसी महिला का 'मनोबल तोड़ने के लिए' उस पर सामूहिक अत्याचार की घटनाएं बढ़ी हैं।

यदि सशक्तिकरण की पहली कसौटी है निर्भयता, तो इसे पाने के लिए यह आग्रह करना होगा कि हमारी पुलिस और न्याय प्रणाली कार्यक्षम बने, औरतों के प्रति संवेदनशील बने, यौन अपराधों के लिए कड़ी सजा हो और आज की ढीली दंड प्रक्रिया को बदला जाए। एक नई व्यवस्था का निर्माण करना पड़ेगा ताकि न्याय प्रक्रिया की तमाम अकार्यक्षमता एवं विलम्ब जनता के सम्मुख लाया जाए, साथ ही अपराध की छानबीन पर से पुलिस का और न्यायिक प्रक्रिया पर से अदालतों का एकाधिकार समाप्त कर इसे गतिवान बनाया जाए। ऐसी कौन-सी योजनाएं हमारे पास हैं और उन्हें किस प्रकार जनता के परिशीलन हेतु रखा जाए?

पारिवारिक और बाहरी सुरक्षा के बाद प्रश्न उठता है रोटी जुटाने का। आज की महिला अपनी रोटी कैसे जुटा लेती है? काम करके। लेकिन कैसा काम, कौन-सा काम, महिलाएं उसे किस प्रकार करती हैं और उस काम का लेखा-जोखा कैसे रखा जाता है—यहां इन चार मुद्दों को हमें देखना होगा।

स्वतंत्रता के पचास वर्ष बाद भी हमारी कामकाजी जनसंख्या में से सत्तर प्रतिशत महिलाएं अकुशल कामों में लगी हैं और उन्हें मजदूरी भी उसी हिसाब से दी जाती है। उदाहरणस्वरूप इमारत बनाने के काम में लगी महिलाएं सिर पर बोझा ढोते हुए दिनभर सीढ़ियां चढ़-उतरकर जो थकाने वाला मेहनत का काम करती है, वह 'अकुशल' श्रेणी में आता है। लेकिन वह आदमी जो यदा-कदा सीमेंट का मिश्रण बनाता है, या जो बेलदार है, या आने वाले सामान का हिसाब रखता है, 'कुशल' माना जाता है और उन्हें अधिक मजदूरी मिलती है। यही विश्लेषण हर क्षेत्र में लागू है। औरत की कमरतोड़ मेहनत का दर्जा है 'अकुशल' काम का और उसकी मजदूरी भी वैसी ही कम है।

दूसरी बात यह कि कई क्षेत्रों में औरत के काम की गिनती ही नहीं है और उसके लिए उसे कोई मजदूरी नहीं मिलती—उदाहरणस्वरूप घरेलू ईंधन के लिए लकड़ी जुटाने का काम, पानी ढोकर लाने का काम, रसोई पकाने और घर की साफ-सफाई का काम, बच्चों की देखभाल, बाजार से सौदा लाना, इत्यादि। हर औरत औसतन छह घंटे इन कामों में लगाती है जिनकी न कोई मजदूरी है और न गिनती। फिर भी इन कामों में कमरतोड़ मेहनत है, नीरस ऊबाऊपन है और इनसे छुटकारे का कोई रास्ता घरेलू औरत के पास नहीं है। इन सारे कामों के लिए उसे कोई सम्मान नहीं, और बिना सम्मान के कैसा सशक्तिकरण?

हमारे समाज में पुरुष को ये सारे काम नहीं करने पड़ते। यदि कोई पुरुष इन कामों में साझेदारी करता है तो उसे 'स्त्रैण' कहते हुए उसका असम्मान किया जाता है। जब तक इन कामों पर और उसे करने वाली औरत पर असम्मान का ठप्पा लगा है, और जब तक उन कामों से मुक्ति का कोई रास्ता महिला को उपलब्ध नहीं होता तब तक महिला सशक्तिकरण दूर ही रहेगा।

यदि सशक्तिकरण की पहली कसौटी है निर्भयता, तो इसे पाने के लिए यह आग्रह करना होगा कि हमारी पुलिस और न्याय प्रणाली कार्यक्षम बने, औरतों के प्रति संवेदनशील बने, यौन अपराधों के लिए कड़ी सजा हो और आज की ढीली दंड प्रक्रिया को बदला जाए।

इन नितान्त 'घरेलू' कामों के लिए महिला को सम्मान मिले, यदा-कदा छुट्टी भी मिले और जब छुट्टी न मिले तब उसके काम में पुरुष सदस्यों की सहभागिता और साझेदारी हो, ऐसा वातावरण बनाने का काम सरकार नहीं कर सकती। यह करना होगा समाज धुरिणों को, चिंतकों को, लेखकों को, स्वयंसेवी संस्थाओं को, और प्रत्येक संवेदनशील व्यक्ति को। हमारी तमाम धार्मिक संस्थाएं भी इस जिम्मेदारी से मुंह नहीं मोड़ सकतीं।

इस सम्मान को प्रस्थापित करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम यह होगा कि इन महिलाओं की प्रवीणता को विभिन्न सामाजिक स्तरों पर पहचाना जाए, आंका जाए और सम्मानित भी किया जाए। उदाहरणस्वरूप यदि कोई बच्ची मां-बाप की अनुपस्थिति में छोटे भाई-बहनों की देखभाल के लिए स्कूल छोड़कर घर बैठी हो, तो शिशु-घरों की देखभाल के लिए या नर्सिंग-कोर्स के लिए उसे अधिक उपयुक्त पात्र माना जाना चाहिए, जबकि होता है उसके ठीक विपरीत।

सशक्तिकरण में शिक्षा का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है। कहा जाता है—'सा विद्या या विमुक्तये'। इसी कसौटी पर आज की शिक्षा प्रणाली पुनर्गठित करने की आवश्यकता है। नई प्रणाली को हुनर-शिक्षा और आर्थिक उत्पादनशीलता के लिए अभिमुख होना पड़ेगा। वह शिक्षा ऐसी हो जिसमें चरित्र निर्माण हो—जहां ईमानदारी, कार्यकुशलता, न्यायपरायणता और देशप्रेम जैसे मूल्यों

को तेजस्वी व प्रखर बनाया जाए; वह ज्ञान की लालसा तथा देशभ्रमण की उत्सुकता उत्पन्न करे; वह महिला में जिज्ञासा भर दे। ऐसी शिक्षा सहजता से उपलब्ध हो, यह आज की प्रमुख आवश्यकता है।

इस उद्देश्य के लिए कि महिलाओं के पास हुनर की आमदनी का जरिया हो, सरकारी योजनाएं कम पड़ रही हैं। किसी भी शैक्षिक संस्था में कम से कम आठ वर्ष बिताए बगैर कोई हुनर-शिक्षा की व्यवस्था नहीं है। यदि महिलाओं ने परंपरागत ढंग से कोई हुनर सीखा है तो उसे आगे बढ़ाने की कोई शिक्षा प्रणाली आज की सरकारी योजनाओं में नहीं है। हुनर सीखी महिला जब अपने हुनर को व्यावसायिक रूप में ढालकर रोजी-रोटी का साधन बनाना चाहती है, तो उसे अन्य कई मुद्दों पर ट्रेनिंग और सहायता की आवश्यकता होती है, मसलन कर्ज प्राप्ति, मार्केटिंग प्रशिक्षण, वित्तीय मैनेजमेंट, क्वालिटी नियंत्रण, इन्वेंटरी कंट्रोल, प्राईसिंग आदि की प्रशिक्षा इत्यादि की जरूरत होती है। ऐसे छोटे अवधि के कोर्स अभी तक सरकारी योजनाओं में कहीं नहीं है जो महिला व्यवसायी की आवश्यकतानुरूप लचीले, सुलभ और कम खर्चे पर उपलब्ध हों।

शिक्षा और हुनर के अलावा एक अंतर्मुखी प्रेरणा भी सशक्तिकरण के लिए आवश्यक है। यहां एक व्यक्तिगत अनुभव बयान करना उचित होगा। शासकीय नौकरी के दौरान महाराष्ट्र के दो जिलों—सांगली और कोल्हापुर में देवदासियों के आर्थिक पुनर्वास की योजना मैंने कार्यालय के माध्यम से चलाई। इसके अंतर्गत व्यवसाय प्रशिक्षण के साथ-साथ कर्ज उपलब्ध कराकर उन्हें उत्पादन के लिए प्रशिक्षित किया गया। (संदर्भ-मेहेंदले, 1991) अन्य सारे प्रशिक्षण के बावजूद हमें सफलता तभी मिली जब हमने एक खास 'व्यक्तित्व विकास' प्रशिक्षण भी चलाया जिसमें इन पर बल दिया गया—

(1) समूह-गान (2) कवायत करते हुए राष्ट्रीय झंडे को सलामी देना (3) साइकिल चलाना, तथा (4) फोटोग्राफी।

इनमें भी साइकिल चलाकर गति पर काबू पाने के आत्मविश्वास का प्रभाव सबसे अधिक पड़ा। एक अन्य उदाहरण है जब एक महिला-ग्रुप को मिस्त्री का काम सिखाया जा रहा था। तीन महीने बाद महिलाओं ने मांग की कि प्रशिक्षण का ढांचा बदला जाए। मिस्त्री का काम करने के साथ-साथ यह भी सिखाया जाए कि ग्राम पंचायत और तालुका पंचायत के कामों के ठेके के लिए टेंडर किस प्रकार भरने हैं, मजदूर कैसे लगाने हैं, उनके काम की परख और माप कैसे करते हैं, मजदूरी का हिसाब कैसे करते हैं, इत्यादि। अब यह महिला ग्रुप कन्स्ट्रक्शन ठेकेदार बना हुआ है और अच्छा काम कर रहा है। तीसरा उदाहरण है कि पंचायती चुनावों के बाद कई महिला पंचों और सरपंचों ने अपने गांवों में खासकर स्कूल छोड़ने वाली बच्चियों की पढ़ाई, या जल-संधारण, तथा अन्य ग्रामीण-विकास कार्यक्रमों में अच्छे काम किए हैं।

हुनर अर्थात व्यवसायिक शिक्षा को देशव्यापी बनाने के लिए दूरदर्शन के माध्यम का बखूबी उपयोग किया जा सकता है क्योंकि पिछले पच्चीस वर्षों में रंगीन दूरदर्शन का जाल ग्रामीण क्षेत्रों तक फैल गया है। लेकिन अफसोस कि हमारी योजनाओं की प्राथमिकता में दूरदर्शन का सही उपयोग यही माना जाता है कि हुनर और व्यवसाय प्रशिक्षण को देश के सुदूर कोने तक पहुंचा कर महिलाओं को लाभान्वित करने की बजाय इसमें मनोरंजन हो ताकि सरकारी तिजोरी के लिए आय इकट्ठी की जा सके। इस प्राथमिकता को तत्काल बदल कर व्यवसायिक शिक्षा के प्रसार में दूरदर्शन का उपयोग बढ़ाना होगा।

तीन अन्य मुद्दों की चर्चा के बिना सशक्तिकरण की चर्चा समाप्त नहीं हो सकती। ये मुद्दे हैं सत्ता और संपत्ति में भागीदारी के। हमारे लोकतंत्र में महिला सशक्तिकरण की पहली नींव उसी दिन पड़ गई थी जिस दिन हर वयस्क महिला को पुरुषों की बराबरी में मतदान करने और चुनाव में खड़े होने का हक मिला। आजादी की लड़ाई में उनके योगदान के फलस्वरूप पहले चुनाव में कई महिलाएं जीतीं। लेकिन धीरे-धीरे चुनाव लड़कर जीतने वाली महिलाओं की संख्या कम होती गई। दूसरी ओर सत्ता के विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता भी बढ़ती गई। अतएव संविधान में संशोधन करके ग्राम पंचायत की जो नई विधा लाई गई उसमें स्त्रियों के लिए तीस प्रतिशत आरक्षण रखा गया। इसके परिणामस्वरूप जाग्रति, और सशक्तिकरण की एक नई लहर उठी है। नव-निर्वाचित कई महिला पंचों और सरपंचों ने पिछले बारह वर्षों में स्त्री शिक्षा, ग्रामीण विकास, शराबबंदी और जल-संधारण के क्षेत्र में अच्छा काम किया है और सत्ता की भागीदारी में स्त्री वर्ग की पात्रता सिद्ध कर दी है। दूसरी तरफ प्रशासन, शिक्षा, वैज्ञानिकी, प्रौद्योगिकी आदि क्षेत्रों में भी महिलाओं ने अच्छा काम किया है लेकिन उनकी संख्या अत्यंत कम है।

महिला आरक्षण पर कईयों ने प्रश्न भी उठाए हैं। न केवल चुनावी प्रक्रिया में बल्कि शिक्षा संस्थाओं में, और सरकारी नौकरियों में भी महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई। उनके लिए यही कहना पर्याप्त होगा कि संविधान में भी

इसकी आवश्यकता महसूस करके इसका प्रावधान किया गया था। इसे संविधान में 'पोजिटिव डिस्क्रिमिनेशन इन फेवर ऑफ वूमेन' कहा गया और इसे उचित भी ठहराया गया है। उसका अनुपालन अब धीरे-धीरे हो रहा है। फिर भी सशक्तिकरण का अंतिम चरण तभी संपन्न माना जा सकता है जब आरक्षण की कोई आवश्यकता न रहे। आज नई पीढ़ी की कई छात्राएं मानती हैं कि वे आरक्षण द्वारा नहीं, बल्कि अपने बलबूते पर आगे जाना पसंद करेंगी। यह एक अच्छा संकेत है। सही सशक्तिकरण का एक बीज उगा है और इस पौधे को सींच कर बड़ा करना होगा।

दूसरा प्रश्न है अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों की महिलाओं का। इन पर पिछड़ेपन की भी मार पड़ती है और औरत होने की भी। सारा दिन अकुशल, मेहनती काम के बाद और कम मजदूरी के बाद घर लौटी औरत को अपने पति की शराब की जरूरतों के लिए मारपीट सहनी पड़ती है। कभी ऊंची जात वालों के सामूहिक क्रोध का शिकार भी महिला को होना पड़ता है। दो आदिवासी जनजातियों की टोलियां आपस में युद्ध करती हैं तब भी महिलाएं या तो स्वयं अत्याचार की शिकार बनती हैं या फिर विधवा की जिन्दगी बिताती हैं। प्राकृतिक आपदाओं के कारण या सरकारी परियोजनाओं के कारण विस्थापित महिलाओं की त्रासदी भी पुरुष विस्थापितों की अपेक्षा कई गुना अधिक है।

अनुसूचित जनजातियों और खासकर उनके महिला वर्ग के सशक्तिकरण का असली जरिया है जंगल। लेकिन एक गलत धारणा यह फैली हुई है कि आदिवासी ही जंगलों के विनाशक हैं। दूसरी गलत धारणा यह है कि आदिवासी समाज के विकास की दिशा केवल वही हो सकती है जो बाकी समाज के लिए अपनाई गई है, भले ही इसके लिए उन्हें अपने नैतिक मूल्य, अपनी जीवन-शैली व सामाजिक मान्यताओं को छोड़ना पड़ता हो। हम भूलते हैं कि सदियों से आदिवासी जनजातियों तथा अनुसूचित जातियों ने अपने पास कई ज्ञानभंडार और कलाएं सुरक्षित रखी हैं जिन्हें केन्द्रबिन्दु मानकर उनके विकास की कुछ पर्यायी पद्धतियां और योजनाएं बन सकती हैं। हमें शीघ्रता से ऐसी योजनाएं बनानी और कार्यान्वित करनी पड़ेंगी।

आजकल एक शंका व्यक्त की जाती है कि क्या महिला सशक्तिकरण के कारण हमारे परिवार टूट रहे हैं। मैं मानती हूं कि 'परिवार' ही बढ़ कर 'समाज' के रूप में विकसित होता है। इसलिए इसका प्रभावी होना आवश्यक है। लेकिन यह तभी संभव है जब उसके सारे घटकों में समानता और साझेदारी हो—इसके लिए परिवार के सारे सुख-दुख, भूमिकाएं, जिम्मेदारियां, आवश्यक किन्तु उबाऊ काम, निर्णय अधिकार इत्यादि आपस में बांटने होंगे। इसके लिए आवश्यक है कि परिवार के घटक सदस्य एक-दूसरे का ख्याल रखें, उनका हाथ बटाएं, उनके अच्छे गुणों का सम्मान करें और कमियों को पूरा करें और यह सब समानता के आधार पर हो।

इसी कारण तीसरा महत्वपूर्ण प्रश्न है संपत्ति में साझेदारी का। उत्पादन क्षेत्र में महिलाओं के पर्याप्त योगदान के बाद भी महिलाओं के लिए संपत्ति में साझेदारी नहीं के बराबर है। इस दिशा में कानूनी सुधारों द्वारा तथा अन्य प्रशासकीय उपायों द्वारा संपत्ति में महिला को अधिकार दिया जा रहा है। दुर्भाग्यवश इन प्रयासों का विरोध भी हो रहा है।

जैसे-जैसे महिला चेतना बढ़ेगी और महिलाएं अपने हक के लिए आग्रह करेंगी, उन पर प्रहार भी होते रहेंगे। सशक्तिकरण के रास्ते में दूसरी रुकावट पुरुष मानसिकता की होगी जिसके अंतर्गत कई क्षेत्र केवल 'पुरुषों के लिए' माने जाते हैं और समझा जाता है कि उनमें महिलाओं को दाखिल होने का अधिकार नहीं है। महिलाओं पर बढ़ते अत्याचारों का एक कारण यह है कि जिस गति से महिला चेतना प्रकट और मुखर हो रही है और महिलाएं अपने अधिकार मांग रही हैं, उतनी गति से पुरुषों में संवेदना जाग्रति नहीं हो पा रही है, जिससे संघर्ष हो रहा है।

भविष्य में विकास की दिशा तय करने वाले दो महत्वपूर्ण विषय होंगे इन्फॉर्मेशन टेक्नोलॉजी और बायो-टेक्नोलॉजी। दोनों ही तकनीक ऐसी हैं कि इस्तेमाल करने वाले की इच्छानुरूप वे चाहें तो केन्द्रीकरण को बढ़ावा मिल सकता है, और चाहें तो विकेन्द्रीकरण को। दोनों तकनीक ऐसी भी हैं जिनमें महिलाओं के लिए अपनी कारगुजारी और क्षमता दिखाने के अच्छे अवसर उपलब्ध होंगे। प्रश्न यह है कि महिलाओं को इन तकनीकों के अग्रभाग में लाना होगा। जिस देश की आधी महिलाएं अनपढ़ हैं और बाकी में से आधी महिलाओं को प्राथमिक शिक्षा पूरी होने से पहले ही स्कूल छोड़ देना पड़ता है वहां यह एक चुनौती होगी कि महिला को इन तकनीकों के अग्रक्रम तक कैसे पहुंचाया जाए। हम उम्मीद करें कि अपने लोकतंत्र एवं समानता के हक का सहारा लेते हुए हम इस दिशा में अग्रसर रहेंगे। ❑

(सुश्री लीना मेहेंदले भारतीय प्रशासनिक सेवा में केन्द्र सरकार की संयुक्त सचिव हैं। प्रस्तुत लेख उनके व्यक्तिगत विचारों पर आधारित है।)

हम ग्रामवासियों का भविष्य जगमगाने में सहायता करते हैं

भारत के तीन चौथाई से ज्यादा लोग गांवों में रहते हैं। उनका भविष्य संवारने के लिए 5.87 लाख में से 5.08 लाख गांवों में बिजली पहुंचाई जा चुकी है। 86% से ज्यादा गांवों में बिजली उपलब्ध है। देश के 26 में से 13 राज्यों ने सभी गांवों के विद्युतीकरण का लक्ष्य प्राप्त कर लिया है।

करीब 127 लाख सिंचाई नलकूप ऊर्जायित किए जा चुके हैं जिनके जरिए 65% भूजल क्षमता से लाभ उठाया जा रहा है। इन नलकूपों से अनाज की पैदावार बढ़ाने और किसानों के जीवन में खुशहाली लाने में मदद मिली है।

आर ई सी ग्रामीण उद्योग धंधों की आमदनी बढ़ाने के उद्देश्य से बिजली के उत्पादक उपयोग को बढ़ावा देता है। यह उत्पादकता बढ़ाने में मदद करता है और ग्रामवासियों का भविष्य उज्ज्वल बनाने के लिए प्रयासरत है।

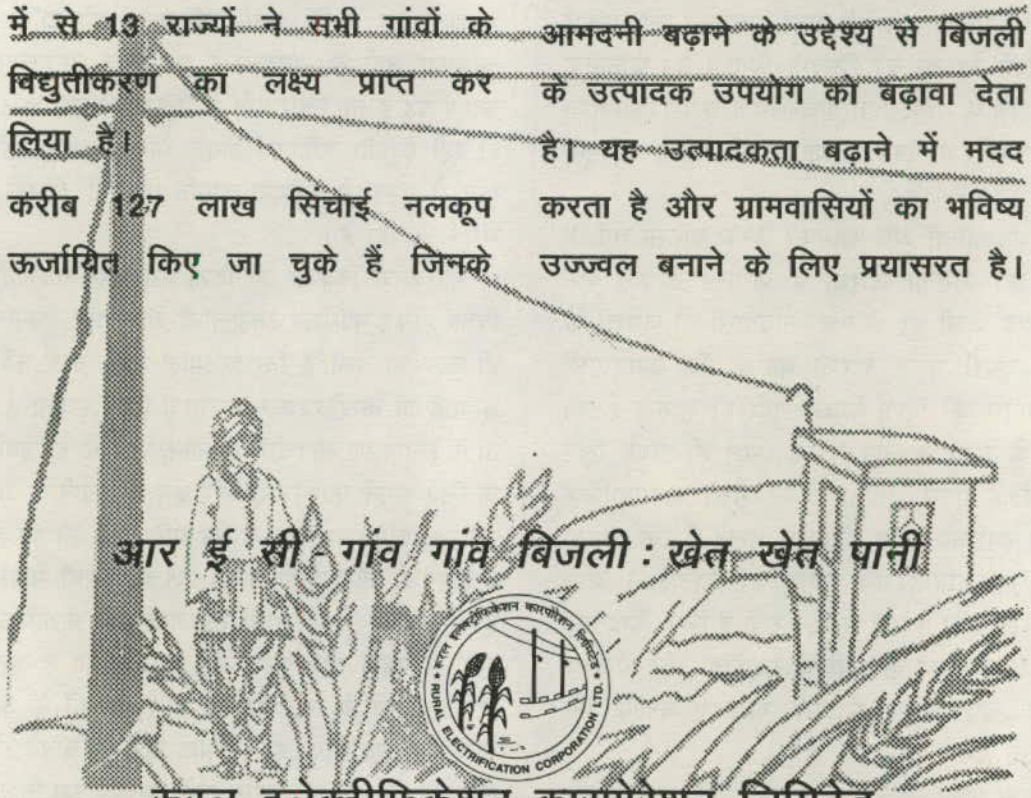

VIGNETTE

रूरल इलेक्ट्रीफिकेशन कारपोरेशन लिमिटेड

(भारत सरकार का उद्यम)

कोर–4, स्कोप काम्प्लेक्स, 7, लोदी रोड, नई दिल्ली–110 003

भू-अधिकार और स्त्री-पुरुष समानता

बीना अग्रवाल

स्त्रियों के कल्याण और सशक्तिकरण के लिए सुरक्षित और कारगर भू-अधिकारों का अत्यंत महत्व है। लेकिन इसके लिए लिंगभेद के मामले में प्रगतिशील गैर-सरकारी संगठनों, विशेषकर महिला संगठनों के साथ-साथ सरकार के महिला अधिकारिता, गरीबी और समानतापूर्ण विकास से जुड़े संगठनों को एकजुट होकर प्रयास करने होंगे।

कोई दो दशक पूर्व, 1979 में पश्चिम बंगाल की गरीब स्त्रियों के समूह ने अपनी ग्राम पंचायत से यह मांग की: ''कृपया जाइए और जाकर सरकार से पूछिए कि जब वह भूमि-वितरण करती है, तब हमें पट्टा क्यों नहीं मिलता? क्या हम किसान नहीं हैं? अगर हमारे पति हमें निकाल बाहर करें, तो हमारे पास क्या सुरक्षा है?''

यह प्रश्न आज भी उतना ही प्रासंगिक है। गांवों में रहने वाले लाखों परिवारों के लिए आज भी भूमि आजीविका कमाने का एक महत्वपूर्ण साधन और सामाजिक हैसियत का पैमाना है। ग्रामीण भारत में यह राजनीतिक शक्ति का एक महत्वपूर्ण साधन भी है। लेकिन अधिकांश भूमि के मालिक पुरुष हैं और वे ही इसे नियंत्रित करते हैं। इस तरह वे स्त्रियों को न केवल उनके आर्थिक कल्याण को बढ़ावा देने, अपितु सामाजिक और राजनीतिक रूप से उन्हें सशक्त बनाने के भी साधनों से वंचित कर देते हैं। दरअसल जीवनयापन की सुरक्षा तथा राजनीतिक आवाज, दोनों ही आज स्त्रियों के सशक्तिकरण के लिए अत्यावश्यक हैं। और, खेती पर आश्रित अधिकांश स्त्रियों के लिए तो जीवनयापन की सुरक्षा की दृष्टि से भू-अधिकारों का महत्व सबसे अधिक होता है।

1979 में बंगाली स्त्रियों के जिस समूह ने भूमि की मांग उठाई थी, उसके पीछे स्पष्ट तौर पर एक ही भावना थी कि अपने जीवनयापन के लिए वे अपने पतियों या अपने पुरुष संबंधियों पर ही जरूर नहीं रह सकती हैं और पुरुषों के हाथों में संसाधनों के होने से हमेशा ही स्त्रियों और बच्चों को समान रूप से फायदा नहीं पहुंचता। दरअसल कई ऐसे मामले देखने में आए हैं जिनमें समृद्ध परिवारों की स्त्रियों से उनके सही संपत्ति अधिकार छीन लिए गए हैं और त्यागे जाने पर अब वे निराश्रित जीवन जी रही हैं या गरीबी में अपना वैधव्य काट रही हैं। कुछ तो अपने समृद्ध देवर-जेठों के खेतों में दिहाड़ी पर मजदूरी करके अपना पेट पाल रही हैं।

भारत के अधिकांश हिस्सों में गरीबों में, विशेषकर निरंतर गरीबी में जीते आ रहे लोगों में स्त्रियों का अनुपात पुरुषों की तुलना में काफी अधिक है। और, स्त्री-प्रधान परिवारों में स्त्रियों को पुरुषों की नाममात्र सहायता से अक्सर परिवार की आजीविका और खेती दोनों ही को सम्हालना पड़ता है और उनका अपना कोई खेत भी नहीं होता। हाल के वर्षों में परिवारों के बीच बढ़ती असमानताओं के चलते स्त्रियों के आर्थिक सरोकारों पर जनता का ध्यान आकृष्ट हुआ है। लेकिन जोर अभी भी मजदूरी रोजगार या लघु उद्यमों के लिए ऋण के जरिए अपना व्यवसाय शुरू करने पर बना हुआ है जिसकी वजह से संपत्ति के स्वामित्व और नियंत्रण को मापने का सामान्य पैमाना विस्मृत हो गया है। जैसेकि हम यहां चर्चा कर रहे हैं संपत्ति के कारगर और स्वतंत्र अधिकार ही स्त्रियों के आर्थिक कल्याण, सामाजिक हैसियत और यहां तक कि उनकी राजनीतिक आवाज को मजबूत करने के अत्यंत महत्वपूर्ण कारक होंगे। फिर भारत जैसे खेतिहर समाज में तो कृष्य भूमि अभी भी ग्रामीण संपत्ति का सबसे अमूल्य स्वरूप है।

फिर भी यह एक ऐसा मुद्दा है जिसकी नीति-निर्माताओं ने आमतौर से अनदेखी

की है। उदाहरण के तौर पर केवल कुछ ही पंचवर्षीय योजनाओं में स्त्रियों के भू-अधिकारों की चर्चा की गई है और वह भी भूमिहीनों को भूमि वितरण के या फिर गरीबी दूर करने के संदर्भ में चलते रूप से है। लिंग समानता या स्त्रियों के सशक्तिकरण के रूप में तो चर्चा की ही नहीं गई है। वैसे आठवीं पंचवर्षीय योजना में मां-बाप की संपत्ति में से स्त्रियों को बराबर का हिस्सा देने की दृष्टि से उत्तराधिकार कानूनों में संशोधन की चर्चा तो जरूर की गई है, लेकिन इसमें इस बात का कोई निदेश नहीं है कि यह होगा कैसे। सामान्य तौर पर योजना के सीमित निर्देशों का जमीनी स्तर पर कारगर क्रियान्वयन तो नहीं के बराबर हुआ है।

आइए, कुछ और विस्तार से चर्चा करते हैं कि स्त्रियों को अधिक कारगर भू-अधिकारों की जरूरत क्यों है। 'कारगर' भूमि अधिकारों से मेरा तात्पर्य केवल कानूनी अधिकारों से नहीं है, बल्कि व्यवहार में आने वाले अधिकारों से है; और केवल स्वामित्व के अधिकारों से नहीं, बल्कि नियंत्रण के अधिकारों से है।

भू-अधिकार क्यों?

कृष्य भूमि में स्त्रियों के लिए स्वतंत्र अधिकार का मामला चार आधारों पर टिका है: कल्याण, कुशलता, समानता और सशक्तिकरण।

कल्याण

भारत के अधिकांश हिस्सों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां भू-आधारित जीविकोपार्जन पर अधिक आश्रित होती हैं। पिछले 25 वर्षों में पुरुष श्रमिक गैर-कृषि कार्यों की तरफ जाते रहे हैं जबकि स्त्रियां अधिकांशतया खेतिहर कार्यों में ही लगी रही हैं। भारत में आज 58 प्रतिशत पुरुष श्रमिक खेती के कामों में लगे हैं जबकि ऐसे स्त्री-श्रमिकों में यह अनुपात 78 प्रतिशत है (ग्रामीण स्त्री श्रमिकों में यह अनुपात 86 प्रतिशत है)। स्त्रियों की कम गतिशीलता, कम शिक्षा और कम संपत्तियां ऐसे कारण हैं जो उन्हें गैर-खेतिहर व्यवसायों की तरफ जाने से रोकते हैं। इसलिए कम से कम निकट भविष्य में तो पुरुषों की तुलना में स्त्रियों के लिए जीविकोपार्जन भू-स्वामित्व से अधिक जुड़ा रहेगा।

परिवार स्तर पर जिनके पास जमीन है उनके लिए गरीबी का खतरा कम रहता है। उत्पादन के सीधे फायदों के अलावा भूमि-पट्टों से नियोक्ताओं के साथ मोलभाव की क्षमता भी बढ़ती है, कुल मजदूरी दरों को बढ़वाने में मदद मिलती है और संकट के दौरान गिरवी रखने और बेची जाने वाली संपत्तियां भी उपलब्ध होती हैं। लेकिन कई कारणों से यह कहा जा सकता है कि पुरुषों के हाथों में ही जमीन का रहना स्त्रियों के कल्याण की कोई गारंटी नहीं है।

सबसे पहले तो परिवार में मौजूद पुरुष-नियंत्रित संसाधनों से होने वाले फायदों को बांटने में स्त्रियों और बच्चों के खिलाफ एक व्यवस्थित-सा पूर्वाग्रह कम कर रहा है। स्वास्थ्य सुविधाओं, शिक्षा और यहां तक कि खानपान जैसी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने में यह पूर्वाग्रह झलकता है और स्त्री-विलोम सेक्स अनुपातों में तो यह और भी स्पष्ट नजर आता है।

दूसरे बिना स्वतंत्र संसाधनों के त्यागे जाने, तलाक या वैधव्य की स्थिति में स्त्रियों के गरीबी और निराश्रित जीवन में रहने की संभावना काफी रहती है। कुछ अध्ययनों से यह भी पता चला है कि पुरुष संबंधियों के आश्रितों के रूप में रहने वाली विधवाओं में अपनी स्वतंत्र कमाई पर रहने वाली स्त्रियों की तुलना में मृत्यु दर अधिक देखी गई है। आज, बेटों समेत अन्य सगे-संबंधी अक्सर विधवाओं को अपेक्षित आर्थिक सुरक्षा प्रदान नहीं करते हैं और इनमें से कई को निराश्रित जीवन व्यतीत करने पर मजबूर होना पड़ता है। त्यागी गई स्त्रियों के मामले भी काफी अधिक देखे गए हैं।

इसके विपरीत स्त्रियों को सीधे भूमि हस्तांतरण से न केवल उनको, बल्कि उनके पूरे परिवार को फायदा होगा। गरीब घरों में देखा जाता है कि स्त्रियां अपनी अधिकांश कमाई घर की बुनियादी जरूरतों, यहां तक कि भोजन पर खर्च कर देती हैं जबकि पुरुष अपनी कमाई का एक बड़ा हिस्सा शराब, तंबाकू आदि निजी जरूरतों पर खर्च करते हैं। हाल के अध्ययनों से यह भी सामने आया है कि बच्चों का कल्याण पिता की कमाई के बनिस्पत माता की कमाई से अधिक जुड़ा है। उदाहरण के लिए देखा गया है कि अगर माता के पास संपत्ति है तो बच्चों को बेहतर भोजन मिलता है और उनके स्कूल जाने तथा उन्हें डाक्टरी सहायता मिलने की संभावना अधिक रहती है। खर्च के तरीकों में अंतर के अलावा जमीन के मालिकाना हक वाली स्त्रियों की मोलभाव की क्षमता ज्यादा होगी, जिससे उन्हें श्रम बाजार में अधिक मजदूरी तय करने में मदद मिल सकती है। दूसरे शब्दों में स्त्रियों और बच्चों को गरीबी का खतरा कम हो जाएगा और उनकी स्थिति में सुधार होगा अगर परिवार के पुरुष सदस्यों के बिचौलिए होने के अधिकार नहीं बल्कि जमीन का सीधा अधिकार स्त्रियों के पास होगा।

तीसरे, परिवारों का एक बड़ा प्रतिशत (20-35 प्रतिशत के बीच अनुमानित) वस्तुत: स्त्रियों की देखरेख में ही चलता है। और उनके अस्तित्व के लिए उनके पास जमीन का होना अत्यावश्यक है। जमीन का स्वामी होने से विधवाओं और वृद्ध

स्त्रियों को सगे-संबंधियों से भी अधिक मात्रा में सहायता मिलती है। कई बुजुर्ग कहते हैं, "संपत्ति के बिना बच्चे भी अपने मां-बाप की ठीक से देखभाल नहीं करते।"

हाल के अध्ययनों से पता चलता है कि बुजुर्ग महिलाएं स्वत: ही अपनी देखभाल करने वाले परिवार के सदस्यों पर निर्भर नहीं कर सकतीं, और जिनके पास थोड़ी बहुत संपत्ति होती है, वे अक्सर अपने संबंधियों से ऐसे आसरे के लिए मोलभाव कर लेती हैं।

यहां इस बात पर जोर देना जरूरी है कि भूमि को इतना अधिक महत्व दिए जाने का यह अर्थ नहीं है कि जीविकोपार्जन के एकमात्र आधार के रूप में भूमि पर ही निर्भर किया जा सकता है। लेकिन एक छोटा-सा भूखंड भी विविधीकृत आजीविका प्रणाली में एक महत्वपूर्ण तत्व हो सकता है। इस भूखंड पर पेड़ उगाए जा सकते हैं या जानवरों के लिए चारा उगाया जा सकता है या मुर्गियां भी पाली जा सकती हैं। कुछ जमीनें तो खेती से हटकर दूसरे कामधंधों के लिए आमतौर से अधिक उपयुक्त होती हैं। इसलिए अगर फसल उगाने के लिए भूखंड छोटा भी हो, तो इससे दूसरी तरह से आमदनी की जा सकती है। और अगर सामूहिक तौर पर इस्तेमाल किए जाएं तो छोटे भूखंड भी फसलों के लिए इस्तेमाल हो सकते हैं।

कुशलता

कल्याण तो इस चर्चा का एक हिस्सा मात्र है। जैसे-जैसे अधिक पुरुष गैर-कृषि व्यवसायों में जाने लगे हैं, वैसे-वैसे खेती के काम का दायित्व स्त्रियों के कंधों पर अधिकाधिक आने लगा है। अगर उनके पास जमीन के पट्टे नहीं होंगे तो उन्हें उत्पादन का फायदा नहीं मिल पाएगा। उन्हें खेती की नई प्रौद्योगिकियों के बारे में भी जानकारी कभी-कभार मिल पाती है। अगर पट्टा होता है तो वे अधिक पैदावार कर सकेंगी और यह उनके लिए तथा पूरी खेतिहर पैदावार दोनों के लिए फायदेमंद होगा। स्त्रियों को पट्टे मिलने से परिवार के भीतर प्रोत्साहन भी बढ़ेंगे। उदाहरण के लिए काश्तकारों को काश्त की अवधि की सुरक्षा प्रदान करने को सामान्यतया किसान को भूमि में पैदावार बढ़ाने वाले निवेश को बढ़ावा देने वाला समझा जाता है। लेकिन परिवारों में कुछ प्रोत्साहनों के बारे में कुछ चर्चा हुई है। वैसे हाल के कुछ अध्ययनों से पता चला है कि परिवार के भीतर कुछ हतोत्साहित करने वाले तत्व भी मौजूद हो सकते हैं। उदाहरण के लिए केन्या में मकई की फसल में निराई प्रौद्योगिकी की शुरुआत से स्त्रियों के भूखंडों पर पैदावार में 50 प्रतिशत तक वृद्धि देखी गई, जहां पैदावार पर नियंत्रण स्त्रियों के हाथों में ही था। पुरुषों वाले भूखंडों पर यह वृद्धि मात्र 15 प्रतिशत रही जबकि वहां भी निराई का काम स्त्रियां करती थीं, लेकिन पैदावार पर अधिकार पुरुषों का होता था। अध्ययन में सुझाव दिया गया है कि परिवार की स्त्रियों को भी अपना सर्वश्रेष्ठ योगदान देने के लिए प्रेरित करने में सुरक्षित भू-अधिकारों और पैदावार पर उनके नियंत्रण का बड़ा हाथ हो सकता है। भारत के लिए भी प्रोत्साहनों के लिंग-विशिष्ट उत्पादकता के प्रभावों के बारे में ऐसे ही अध्ययन जरूरी हैं। बर्किनाफासो में किए गए एक और अध्ययन से पता चला कि फसल चक्र के चुनने के अपने विकल्प के कारण स्त्रियों को अपने पतियों के भूखंडों की अपेक्षा अपने भूखंडों पर अधिक पैदावार प्रति हेक्टेयर मिली। अध्ययन में अनुमान लगाया गया है कि अगर खाद और उर्वरक जैसे उत्पादन के कारकों को पुरुषों के भूखंडों के बजाय स्त्रियों के स्वामित्व वाले भूखंडों में लगा दिया जाए तो पैदावार में 10 से 20 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हो सकती है और यदि स्त्रियों के पास जमीन हो तो वे कृषि के आदान तथा विस्तार सेवाएं प्रदान करने वाली सरकारी एजेंसियों पर बेहतर ढंग से दबाव डाल सकती हैं। फिलहाल इस समय किसानों को मिलने वाली सभी बुनियादी सुविधा संबंधी सहायता पुरुषों के पक्ष में है।

कुछ लोग इस तर्क का सहारा लेकर स्त्रियों को भूमि-अधिकार दिए जाने का विरोध करते हैं कि इनसे खेतों का अधिक बंटवारा हो जाएगा जिसकी वजह से पैदावार घट जाएगी। लेकिन मौजूदा प्रमाण बताते हैं कि छोटे आकार से ही उत्पादन में कमी नहीं आती। दरअसल कई छोटे खेतों की पैदावार बड़े खेतों की तुलना में अधिक है और कम आकार व पैदावार का संबंध हरित क्रांति के बाद वाले इस दौर में भी बरकरार है। फिर पुरुषों को विरासत में मिलने वाली जमीन से भी तो जमीन के टुकड़े होते हैं और स्त्रियों के मामले में भी इसे इसी तरह से देखा जाना चाहिए। चकबंदी एक समाधान है। दरअसल हरित क्रांति के बाद के दौर में स्वयं किसान द्वारा चकबंदी में तेजी आई है। शायद इस कारण और पिछले वर्षों में चकबंदी के सरकारी प्रयासों से ही अखिल भारतीय चकबंदी का स्तर 1960-61 के 5.7 से घटकर 1991-92 में 2.7 पर आ गया है। फिर कई छोटे पुरुष पट्टेधारी अपने छोटे खेतों को बटाई पर दे देते हैं जिससे जोत की भूमि स्वामित्व वाली भूमि से अक्सर काफी बड़ी हो जाती है और स्त्रियों के सामने यह विकल्प भी मौजूद है। इसके अलावा भारत में छोटे आकारों के खेतों में वृद्धि के समाधान तो संयुक्त निवेश की नई संस्थागत व्यवस्थाओं और समूहों द्वारा खेती की नई पद्धति में देखे जा सकते हैं जिनके बारे में हम ब्यौरेवार चर्चा करेंगे। लेकिन एक बात तो

निश्चित है कि जोतों के छोटे होते जाने के तर्क के आधार पर विरासत की पुरानी प्रथाओं को उचित नहीं ठहराया जा सकता।

समानता

स्त्रियों के भू-अधिकारों को बढ़ावा देने में एक तीसरा महत्वपूर्ण कारण समानता का है। स्त्रियों और पुरुषों के लिए आर्थिक व सामाजिक समानता एक न्यायोचित समाज का पैमाना होगी और ऐसी समानता को विकास के एक महत्वपूर्ण सूचक के रूप में देखना होगा।

सशक्तिकरण

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि समानता समान रूप से सशक्तिकरण के साथ जुड़ी है। स्त्रियों को भू-अधिकार देने से एक ओर तो वे आर्थिक दृष्टि से समर्थ होंगी और दूसरी ओर घर और बाहर दोनों जगह सामाजिक और राजनीतिक लिंग भेदों की चुनौती देने की उनकी क्षमता मजबूत होगी।

1970 के दशक के अंतिम वर्षों में बिहार का बोधगया किसान आंदोलन इसका एक ज्वलंत उदाहरण है। इसमें भूमिहीन परिवारों की स्त्रियों और पुरुषों ने मिलकर उस जमनी के मालिकाना हकों के लिए आंदोलन किया था जिस पर वे खेती करते थे और जो एक स्थानीय मंदिर के परिसर के कब्जे में अवैध रूप से थी। इस आंदोलन के दौरान स्त्रियों ने स्वतंत्र भूमि अधिकारों की मांग की और दो गांवों में स्पष्ट अधिकारों सहित इन्होंने भूखंड भी प्राप्त किए। छात्र युवा संघर्ष वाहिनी के निचले स्तर के कार्यकर्ताओं ने रिपोर्ट दी कि कई गांवों में जहां पट्टे आदमियों को मिले थे, वहां नशाखोरी, हिंसा और धमकियों में बढ़ोत्तरी हुई और पति कहते देखे गए ''निकल घर से; अब यह जमीन मेरी है।'' लेकिन जहां स्त्रियों को पट्टे मिले, वहां वे अब कहने लगी हैं, ''हमारी जबान थी लेकिन हम बोल नहीं सकती थीं, हमारे पांव थे पर हम चल नहीं सकती थीं। अब हमारे पास जमीन है, हमारे पास बोलने व चलने की ताकत है।'' यही वह सशक्तिकरण है जिसे गांव की औरतें स्वयं देखती हैं।

विरासत कानूनों में भूमि-अधिकार

स्त्रियों को तीन तरीकों से भूमि मिल सकती है: परिवारों से विरासत में; सरकार से हस्तांतरण में और बाजार से खरीद या पट्टे पर। इनमें विरासत सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि भारत में अधिकांश कृष्य भूमि निजी हाथों में है। लगभग 86 प्रतिशत जमीन निजी हाथों में है और 89 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों के पास कुछ न कुछ जमीन है, हालांकि अधिकांश के पास जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े हैं जो अधिकांश मामलों में विरासत से मिले हैं।

परंपरानुसार भारत में विरासत पित्रात्मक आधार पर होती है। इसका अपवाद केरल और मेघालय के कुछ हिस्से ही हैं। आज कानूनी तौर पर स्त्रियों के विरासत के अधिकार व्यक्तिगत कानूनों द्वारा संचालित होते हैं जो विभिन्न धर्मों में अलग-अलग होते हैं। ये कानून अधिकांश स्त्रियों को रिवाज़ों की तुलना में काफी अधिकार प्रदान करते हैं, फिर भी कई बड़ी विसंगतियां मौजूद रहती हैं। कानून जटिल और भेदपूर्ण हैं। महत्वपूर्ण बात तो यह है कि हिंदुओं और मुसलमानों में अधिकांश स्त्रियों को इन दो तरह की असमानताओं का सामना करना पड़ता है:

(1) पुरुषों की अपेक्षा विरासत में कम हिस्सा।

(2) खेतिहर भूमि के संबंध में विशेष अयोग्यताएं।

उदाहरण के लिए भारत में हिंदू 1956 के हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम संचालित होते हैं, हालांकि पिता की अलग संपत्ति में पुत्रियों और पुत्रों को समान अधिकार हैं और संयुक्त परिवार संपत्ति में उनका सांकेतिक हिस्सा होता है। पुत्रों के विपरीत पुत्रियों का संयुक्त परिवार संपत्ति में समान समांशिता हिस्सा नहीं होता। फिर यदि कोई पुरुष समांशी संपत्ति में अपना समांशी अधिकार छोड़ देता है तो उसके बेटों का संयुक्त संपत्ति में संयुक्त समांशी अधिकार बना रहेगा। असल में उनका इसमें हिस्सा बढ़ेगा, लेकिन पुत्रियों, विधवा तथा अन्य प्रथम श्रेणी की स्त्री अधिकारियों का ऐसी संपत्ति में केवल पुरुष समांशी के जरिए ही अधिकार रहता है। इसलिए ऐसी संपत्ति पर विरासत में उनका अधिकार समाप्त हो जाएगा। कोई व्यक्ति अपनी अलग या स्वत:-प्राप्त संपत्ति को समांशी संपत्ति में बदल सकता है और तब ऐसी संपत्ति में उसके बेटों के साथ बराबर का हिस्सा रखने वाले उसके प्रथम श्रेणी उत्तराधिकारियों को काफी नुकसान होगा। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि खेतिहर जमीन की कुछ श्रेणियां हिंदु उत्तराधिकार अधिनियम के दायरे में नहीं आतीं, बल्कि उनके लिए अलग राज्यों के अलग-अलग आवधिक कानून हैं। कई राज्यों में इन आवधिक कानूनों में व्यवस्था है कि पुरुष वंशक्रम की चार पीढ़ियों के पुरुषों को विधवा पत्नी और पुत्री पर तरजीह मिलेगी।

पिछले कुछ दशकों में दक्षिणी और कुछ पश्चिमी राज्यों ने अपने कानूनों में अधिक लिंग समानता की दृष्टि से संशोधन किए हैं। उदाहरण के लिए पुत्रियों को संयुक्त परिवार की संपत्ति में समांशी बनाया गया है, लेकिन उत्तर भारत में विषमताएं अभी भी मौजूद हैं।

फिर अविभाजित भारत में मुसलमानों के लिए 1937 के मुस्लिम व्यक्तिगत कानून (शरीयत) एप्लीकेशन एक्ट से स्त्रियों के अधिकारों की स्थिति में काफी सुधार आया। लेकिन पुरुषों

और स्त्रियों के हिस्सों में विषमताएं फिर भी बनी रहीं। फिर इस एक्ट ने खेतिहर जमीन को अपने दायरे से बाहर रखा, जिसकी विरासत स्थानीय रीति-रिवाजों और काश्तकारी अवधि कानूनों के तहत तय की जानी थी और ये कानून पुरुषों के ही अधिक पक्ष में थे। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात दक्षिण भारतीय राज्यों ने 1937 के शरीयत एक्ट में संशोधन किया तथा खेतिहर जमीन को भी इसके दायरे में ले आया गया। लेकिन उत्तर भारत में कानून अभी भी लिंगभेद की दृष्टि से काफी असमान है।

भारत के कानूनों में विरासत में स्त्री-पुरुष समानता की सबसे अधिक बात हमें पारसियों और ईसाइयों तथा केरल के अधिकांश समुदायों में देखने को मिलती है।

व्यावहारिक स्वामित्व

कानून में अधिकार तो तस्वीर का एक पहलू मात्र हैं। कानून व्यवहारिकता के बीच का अंतर भी उतना ही महत्वपूर्ण है। दुर्भाग्य से भू-स्वामित्व के बारे में बड़े पैमाने पर किए गए आर्थिक सर्वेक्षणों में स्त्री और पुरुष की दृष्टि से अलग-अलग आंकड़े एकत्र नहीं किए गए हैं। लेकिन छोटे-मोटे सर्वेक्षणों से पता चला है कि अधिकांश भारतीय महिलाओं की अपनी जमीनें नहीं हैं और जिनके पास हैं उनमें भी काफी कम का अपनी जमीनों पर कारगर ढंग से नियंत्रण है। उदाहरण के लिए विकास समाजविज्ञानी मार्था चेन द्वारा 1991 में किए गए एक नमूना सर्वेक्षण से पता चला कि भू-स्वामी पिताओं वाली केवल 13 प्रतिशत महिलाओं को पुत्रियों के रूप में विरासत में संपत्ति मिली। राजस्थान में तो यह आंकड़ा 2 प्रतिशत ही था।

विधवाओं में यह अनुपात कुछ बेहतर था। अखिल भारतीय स्तर पर 51 प्रतिशत विधवाओं को विरासत में जमीन मिली। लेकिन इसका मतलब यह भी था कि 49 प्रतिशत विधवाओं को विरासत में जमीन मिली ही नहीं। फिर, विधवा की भूमि सामान्यतया वयस्क पुत्रों के साथ संयुक्त रूप से पंजीकृत होती है और वे ही असल मायनों में उसको नियंत्रित करते हैं। बिना पुत्रों वाली विधवाओं को विरासत में मिली जमीन शायद ही कभी मिलती हो। फिर 10 वर्ष की आयु से अधिक की ग्रामीण स्त्रियों में विधवाओं का अनुपात 11 प्रतिशत मात्र ही पाया गया है। इसलिए विधवाओं के अधिकारों को स्वीकार करने मात्र से ही पुत्रियों के रूप में उनके विरासत में हिस्सा न होने की कमी पूरी नहीं हो सकती।

रुकावटें

स्त्रियों को उत्तराधिकार प्राप्त न होने के मुद्दे की विराटता को केवल असमान कानूनों के जरिए स्पष्ट नहीं किया जा सकता। दरअसल असमानतापूर्ण कानून और कानून व व्यवहार में भारी अंतर दोनों के पीछे जो कारण हैं वे हैं सामाजिक मापदंड और प्रसाशनिक पूर्वाग्रह। आइए विचार करें कि यह अंतर क्यों है।

(1) अधिकांश पितृसत्तात्मक वंश समुदायों में माता-पिता अपनी पुत्रियों को जमीन देने में हिचकते हैं। उत्तर भारत के मामले में तो यह बात सही है। माता-पिता अक्सर अपनी बेटियों को उत्तराधिकार नहीं देते क्योंकि वे सोचते हैं कि बेटियां तो शादी के बाद गांव छोड़कर चली जाएंगी। लेकिन बेटों के बारे में यही तर्क कम लगाया जाता है। जब वे शहर में नौकरी के लिए चले जाते हैं, तब भी वे विरासत का अपना अधिकार बनाए रखते हैं। अगर बेटी को जमीन में हिस्सा मिलता है तो वह या तो खुद उस पर खेती कर सकती है, या उसे पट्टे पर देकर कुछ आमदनी कर सकती है या फिर फसलों में अपना हिस्सा बंटा सकती है। उदाहरण के लिए श्रीलंका, जहां पारंपरिक रूप से विरासत के अधिकार भारत की तुलना में अधिक समानतापूर्ण हैं, अक्सर स्त्रियों को विरासत में नारियल या केले के पेड़ मिलते हैं और भूखंड की या उनके वृक्षों की देखरेख करने वाले संबंधी से फलों में हिस्सा मिलता है।

(2) गांव से बाहर विवाह जैसी वैवाहिक प्रथाओं के अलावा कई समुदायों में, विशेषकर उत्तर भारत की ऊंची जातियों के हिंदुओं में कई सामाजिक रीति रिवाज ऐसे हैं जो माता-पिता को अपनी विवाहित पुत्रियों से किसी प्रकार की मदद लेने से रोकते हैं। यहां तक कि लोग अपनी बेटियों के घर का अन्न-जल तक ग्रहण नहीं करते। इसकी वजह से भी मां-बाप अपनी बेटियों को उत्तराधिकार में जमीन नहीं देते क्योंकि उन्हें संकट के समय बेटियों से किसी प्रकार की उम्मीद नहीं होती। हालांकि ध्यान देने योग्य बात है कि ऐसे रिवाज धर्म से नहीं बल्कि संस्कृति से जुड़े हैं। उदाहरण के लिए दक्षिणी भारत के हिंदुओं में अक्सर ऐसा नहीं पाया जाता।

(3) कई भारतीय महिलाएं माता-पिता की संपत्ति में अपने हक अपने भाइयों के पक्ष में भी छोड़ देती हैं। कारगर सामाजिक सुरक्षा प्रणाली के न होने से स्त्रियों के लिए भाई संभावित पारिवारिक सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था होते हैं। व्यावहारिक तौर पर विवाह-विच्छेद हो जाने पर बहन को अपने घर में खुशी से रखने के लिए तैयार नहीं दिखते हैं। इस तरह हम समझते हैं कि अगर सामाजिक सुरक्षा की कोई कारगर व्यवस्था होगी तो उससे यह परावलम्ब घटेगा और स्त्रियां अपना हक मांग सकेंगी।

(4) यह अपेक्षा भी स्त्रियों को अपना हक मांगने से रोकती है कि एक 'अच्छी बहन' अपना हिस्सा छोड़ देगी।

(5) अगर स्त्रियां मर्जी से अपना हक नहीं छोड़ती तो पुरुष संबंधी अक्सर मुकदमे कर देते हैं, नकली वसीयतें बनवा लेते हैं, धमकियां देते हैं और कुछ तो मार-पीट पर भी उतारू हो जाते हैं।

(6) कई सरकारी कार्यकर्ता इन समस्याओं को और बढ़ा देते हैं और स्त्रियों के पक्ष में कानून लागू करने में अवरोध खड़े करते हैं। गांव के पटवारी बेटियों के विरासत के हिस्सों को दर्ज करते समय स्पष्ट रूप से पूर्वाग्रहों से ग्रस्त दिखाई पड़ते हैं। अगर पंचायतों के लिए चुनी गई स्त्रियां इस मुद्दे पर सतर्क रहें और उनमें स्त्री समानता के बारे में जागरुकता हो तो इस स्थिति में कुछ हद तक सुधार आ सकता है।

(7) स्त्रियों के आवागमन पर और समाज में उठने-बैठने पर सामाजिक बंधनों की वजह से भी उनका अपने हक के लिए आवाज उठाना कठिन हो जाता है। इसके अतिरिक्त खेती का काम करने वाली स्त्रियों के लिए तो ऐसे बंधन और भी रुकावटें खड़ी कर देते हैं। उत्तर भारत के अधिकांश गांवों में स्त्रियों से अपेक्षा की जाती है कि वे आदमियों के इकट्ठा होने वाली बाजारों जैसी जगहों पर न जाएं, ऐसी जगहों से बचें। इससे नई कृषि पद्धतियों की जानकारी प्राप्त करने, कृषि आदानों की खरीद करने और अपनी फसल बेचने में उन्हें दिक्कतें आती हैं।

प्रादेशिक अंतर

लेकिन यहां इस बात पर ध्यान आकर्षित करना जरूरी है कि स्त्रियों के उत्तराधिकार के प्रति विरोध और उनके सामने आने वाली सामाजिक कठिनाइयां पूरे भारत में एक समान ही हैं। दक्षिण और उत्तर-पूर्व भारत में यह विरोध कम मुखर है। वहां गांव में ही विवाहों पर कोई प्रतिबंध नहीं है और संकट के समय वहां माता-पिता अपनी बेटियों से आर्थिक सहायता ले सकते हैं। स्त्रियों को अलग-थलग रखने के परदे जैसे रिवाज भी उत्तर-पश्चिम भारत में मजबूती से जड़ें जमाए हैं, जबकि दक्षिण और उत्तर-पूर्वी इलाकों में परदे जैसी कोई चीज नहीं है।

भू-सुधार और सार्वजनिक भूमि

अब तक चर्चा उत्तराधिकार और निजी भूमि पर केंद्रित रही है। स्त्रियों के लिए जमीन का दूसरा सबसे बड़ा स्रोत सरकार है। लेकिन सार्वजनिक भूमि वितरण में भी लिंग-भेद के पूर्वाग्रह स्पष्ट नजर आते हैं। हालांकि सरकार के पास कृषि योग्य भूमि, जिस पर उसका सीधा नियंत्रण होता है, बहुत ही सीमित मात्रा में है; और इसके बारे में सरकार जो कुछ करती है, उससे समाज प्रभावित होता है।

आमतौर से सरकारें परिवार के पुरुष प्रमुख के नाम जमीन देती हैं, अब चाहे यह जमीन भू-सुधार के तहत या गरीबी हटाने या फिर पुनर्वास के नाम से बांटी जा रही हो। खास बात तो यह है कि भूमि सुधार के कार्यक्रम, चाहे किसी भी राजनीतिक पार्टी द्वारा चलाए जाते हों, सभी ने स्त्रियों के सरोकारों को नजरअंदाज किया है। यहां तक कि पश्चिम बंगाल के 1970 के दशक के उत्तरार्द्ध वाले आपरेशन 'बर्ग' कार्यक्रम काश्तकारों के नाम दर्ज करने और भूमिहीनों को भूमि-वितरण, दोनों ही मामले स्पष्ट रूप से पुरुषों के पक्ष में थे। यहां तक कि योजना में संयुक्त रूप से पट्टे देने की व्यवस्था ही नहीं थी। हालांकि सिद्धांत रूप से एक अपवाद रखा गया था, जो परित्यक्ता, तलाकशुदा आदि जैसे एकल-महिला परिवारों के लिए था। यह अपवाद केवल उन महिलाओं के लिए था, जिनके वयस्क बेटे नहीं थे और व्यावहारिक रूप से, इस क्षेणी में आने वाली महिलाओं में से कुछ ही को जमीनें मिलीं। मिदनापुर जिले में किए गए एक सर्वेक्षण से पता चला कि वितरित की गई 107 'खास' जोतों में 98 प्रतिशत पुरुषों को मिलीं। स्त्री-प्रमुख परिवारों में से 90 प्रतिशत मामलों में जमीन के पट्टे स्त्रियों के बेटों के नाम दिए गए। केवल 18 एकल महिलाओं को जमीनें मिलीं। किसी भी विवाहित महिला को संयुक्त-पट्टे नहीं मिले।

पुनर्वास योजनाओं के तहत भूमि वितरण के मामलों में भी यही पूर्वाग्रह देखने में आया। छह राज्यों—गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक और उड़ीसा में बड़ी बांध परियोजनाओं के तहत भूस्वामी परिवारों के पुनर्वास पैकेज पर गौर करते हैं। कर्नाटक को छोड़कर शेष पांच राज्यों में विधवा पत्नियों के लिए कोई प्रावधान नहीं है। इसके अलावा, छह में पांच अन्य राज्यों में वयस्क बेटों के लिए विशेष प्रावधान हैं, लेकिन केवल दो ही राज्यों में वयस्क अविवाहित बेटी के लिए व्यवस्था है। इनमें से एक राज्य में बेटी के लिए 35 वर्ष से अधिक उम्र का होने की शर्त है। इसलिए उदाहरण के लिए सरदार सरोवर परियोजना के तहत गुजरात में विस्थापित खेतिहर परिवारों में प्रत्येक वयस्क बेटे के लिए अतिरिक्त भूमि की व्यवस्था की गई है (2 हेक्टेयर प्रति परिवार के अतिरिक्त), लेकिन वयस्क बेटियों के लिए कोई भी व्यवस्था नहीं है। मध्य प्रदेश में वयस्क विवाहित बेटे को नकद हरजाना मिलता है, लेकिन वयस्क पुत्री को कुछ नहीं दिया गया है। महाराष्ट्र में भी, शुरू में तो पात्र-सूची में केवल वयस्क पुत्रों को ही शामिल

किया गया था, वयस्क पुत्रियों को तो 1980 के दशक के मध्य के काफी बाद में इस सूची में जगह दी गई और उनके लिए भी 35 वर्ष से अधिक आयु की शर्त रखी गई थी। उड़ीसा की ऊपरी इंद्रावती परियोजना में केवल वयस्क विवाहित बेटों को ही जमीन मिलती है। वयस्क बेटों को ही विशेषाधिकार देना न केवल लिंग भेद की दृष्टि से भेदभावपूर्ण है, बल्कि उन परिवारों के लिए भी भेदभावपूर्ण है, जिनके कोई भी वयस्क बेटा नहीं है। 1992 में फील्ड के दौरे के दौरान सरदार सरोवर परियोजना के विस्थापित कुछ जनजातीय सदस्यों ने मुझसे पूछा था कि 'उनका क्या होगा, जिनके यहां वयस्क बेटियां ही हैं?' अधिकांश पुनर्वास योजनाओं में विधवाओं और वयस्क पुत्रियों के प्रति भेदभावपूर्ण व्यवहार के अलावा परिवारों में भूमि का हस्तांतरण पुरुष के ही नाम पर हुआ है।

अधिकांश सरकारी योजनाओं में सरकारी पदाधिकारी स्त्रियों के नाम भूमि का हस्तांतरण नहीं करते हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि भूमि पर परिवार के पुरुष प्रमुख का दावा ही वैध है। गलत ही सही, कई यह भी मानते हैं कि स्त्रियां स्वतंत्र रूप से भू-प्रबंध करने में सक्षम नहीं होतीं, जबकि सत्य तो यह है कि गांवों में पुरुषों की तुलना में औरतें खेत में बराबर से अधिक काम करती हैं।

क्या किया जा सकता है?

भूमि पर स्त्रियों के स्वामित्व के दायरे को बढ़ाने के लिए यह जरूरी है कि उत्तराधिकार, सरकारी हस्तांतरण और बाजार से खरीद सभी मोर्चों पर काम किया जाए।

उत्तराधिकार के जरिए भूमि की पहुंच का दायरा बढ़ाने के लिए कानून और सामाजिक परिवर्तन दोनों का ही सहारा लेना होगा। कानूनी व्यवस्थाओं में कई तत्वों को शामिल करना होगा: पहले, उत्तराधिकार कानूनों को अधिक महिला-अनुकूल बनाना होगा। दूसरे, कानूनों को कारगर बनाने के लिए कानून के बारे में जानकारी बढ़ाना जरूरी है। स्कूली पाठ्यक्रमों में इस विषय को शामिल किया जा सकता है। तीसरे, ग्राम स्तर पर स्त्रियों के जमीन के हिस्से को दर्ज करना भी जरूरी है। यहां, पंचायतों के लिए चुनी गई महिला प्रतिनिधियों से मदद मिल सकती है। वे सुनिश्चित कर सकती हैं कि गांव के कारिंदे स्त्रियों के दावों को सही-सही दर्ज करें और भूमि भी उचित रूप से स्त्रियों के नाम में दर्ज हो। इसके अतिरिक्त, कुछ स्त्रियों को ऐसे मामलों में कानूनी सलाह और सहायता की जरूरत हो सकती है, जहां वे अपने हक के लिए लड़ना चाहती हों।

पुत्रियों के उत्तराधिकार के प्रति दृष्टिकोणों में सामाजिक बदलाव अत्यधिक आवश्यक है। जब तक स्त्रियों के दावों को सामाजिक दृष्टि से वैध रूप में नहीं देखा जाएगा, तब तक चाहे कानूनों को महिलाओं की समानता की दृष्टि से कितना भी अनुकूल न बना लिया जाए, माता-पिता वसीयत लिख कर बेटियों को संपत्ति के उत्तराधिकार से बेदखल करते रहेंगे। जागरुकता कार्यक्रमों, मीडिया आदि के माध्यम से दृष्टिकोण में बदलाव के लिए इस बात पर जोर देना जरूरी है कि अपने और अपने परिवार के कल्याण और निर्वाह के लिए आज स्त्री का आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी होना आवश्यक है। और इसके लिए उसे दहेज ही नहीं बल्कि संपत्ति में हिस्से की जरूरत है, क्योंकि दहेज तो परंपरा के अनुसार बेटी के ससुराल को चला जाता था। उस पर उन्हीं का नियंत्रण रहता था। हां, यह बात अलग है कि दहेज एक गैर-कानूनी रिवाज है।

जहां तक सरकारी भूमि वितरण के जरिए जमीन पाने का सवाल है, हम पहले भी कह चुके हैं कि यह सुनिश्चित करना जरूरी है कि चाहे सरकार भूमि सुधारों के तहत जमीन बांटे या 'गरीबी हटाओ' कार्यक्रमों के अंतर्गत, स्त्रियों को बराबर का हिस्सा दिया ही जाना चाहिए। नर्मदा घाटी परियोजना जैसी बड़ी बांध परियोजनाओं से विस्थापित लोगों को जमीन वितरित किए जाते समय भी इस बात पर ध्यान रखा जाना चाहिए।

सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि चूंकि वितरण के लिए उपलब्ध सरकारी भूमि सीमित मात्रा में है, इसलिए जरूरी है कि (क) उन तरीकों पर विचार किया जाए, जिनसे स्त्रियों को बाजार से भूमि प्राप्त करने में मदद मिले; और (ख) इस पर सामूहिक रूप से खेती की जाए। आइए, यह कैसे हो, इस पर विचार करें।

सरकारी नीति पारिवारिक आधार पर स्वामित्व व खेती की जाने वाली जमीनों (खेतों) को बढ़ावा देती है। उदाहरण के लिए, अब तक जोर इस बात पर रहा है कि गरीब स्त्रियों को उनके पतियों के साथ संयुक्त 'पट्टे' दिए जाएं। इसमें कोई शक नहीं कि पट्टा न होने से तो संयुक्त पट्टे बेहतर हैं, लेकिन पतियों के साथ संयुक्त पट्टे होने से कई समस्याओं के उत्पन्न होने की संभावनाएं रहती हैं। पैदावार पर नियंत्रण पाने, अपनी मर्जी से भूमि को रेहन रखने और वैवाहिक मतभेदों की स्थिति में अपना हिस्सा लेने में स्त्रियों को कठिनाई आती है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि ऐसी स्थिति में उन्हें खेतों में काम करने के लिए दूसरी औरतें नहीं मिलतीं। तब विकल्प क्या है?

पहला विकल्प तो यह है कि जिन महिलाओं की अपनी जमीनें हैं, वे दूसरी स्त्रियों के साथ मिलकर भूमि में पूंजीगत निवेश करें जबकि पैदावार का प्रबंध अलग-अलग करें। पुरुष किसानों ने ऐसा किया है। उदाहरण के लिए कई साल पहले

राजस्थान के अलवर जिले के एक गांव में मैंने किसानों के एक समूह को मिलकर ट्यूबवैल लगाते देखा था। संयुक्त निवेश से महंगे आयनों का खर्च घट जाता है। स्त्री किसानों को भी इसी दिशा में प्रोत्साहन दिया जा सकता है। वैसे स्त्रियों के पास भूमि में लगाने के लिए धन कम ही होता है, लेकिन अगर वे अपने संसाधन एकत्र कर लें और सामूहिक रूप से निवेश करें तो वे आसानी से ऐसा कर सकती हैं।

स्त्रियों के लिए दूसरा विकल्प यह हो सकता है कि वे मिलकर जमीन खरीदें और उस पर खेती करें। इसका बड़ा दिलचस्प उदाहरण आंध्र प्रदेश में देखा जा सकता है। यहां सूखे की संभावना वाले मेडक जिले के 75 गांवों में गैर-सरकारी संगठन, डेकन डेवलपमेंट सोसाइटी गरीब स्त्रियों के साथ मिलकर काम कर रही है।

आंध्र प्रदेश सरकार की एक योजना है, जिसके तहत समूहों में खेतिहर जमीन खरीदने के लिए भूमिहीन अनुसूचित जाति की महिलाओं के समूहों को सब्सिडी पर कर्जा दिया जाता है। डेकन डेवलपमेंट सोसाइटी की सहायता से स्त्रियों ने इस योजना के लिए अपने समूह बनाए और संयुक्त रूप से जमीनें खरीदी हैं। इसके बाद समूह के सदस्यों में भूमि वितरित कर दी जाती है। प्रत्येक स्त्री के नाम लगभग एक एकड़ जमीन पंजीकृत होती है। लेकिन वे इन जमीनों पर सामूहिक रूप से जैव कृषि तकनीकों से खेती करती हैं। इस प्रक्रिया में स्त्रियों ने भूमि का सर्वेक्षण करना सीखा है, ट्रेक्टर किराए पर लेने, सरकारी अधिकारियों से मिलने, आदान खरीदने तथा पैदावार बेचने के लिए शहरों में जाने की उन्हें आदत हो गई है।

एक सामूहिक दृष्टिकोण से पूंजीगत निवेश के लिए स्त्रियों को धन जुटाने तथा श्रम के बंटवारे और पैदावार के विपणन में भी मदद मिलती है और यदि भूमि संयुक्त नाम में हो तो इससे स्त्रियों की अपने पुरुष संबंधियों का दबाव झेलने और जमीन पर नियंत्रण बनाए रखने की स्थिति मजबूत होगी।

एक तीसरी संभावना यह है कि समूह के रूप में स्त्रियां पट्टे पर जमीन लें और उस पर खेती करें। डेकन डेवलपमेंट सोसाइटी की एक योजना के तहत आंध्र प्रदेश में महिलाएं निजी भूस्वामियों से पट्टे पर भूमि ले रही हैं। कुछ मामलों में स्त्री-समूहों ने इस काम के लिए 'ड्वाकरा' में मिले पैसे का इस्तेमाल किया। 1989 में शुरू किया गया यह कार्यक्रम अब 56 गांवों में 800 एकड़ से अधिक भूमि पर फैला हुआ है। स्त्रियों की समितियां प्रत्येक स्त्री के काम का लेखा-जोखा रखती हैं और मजदूरी व पैदावार का समानतापूर्ण वितरण सुनिश्चित करती हैं। जो स्त्रियां सामूहिक श्रम के लिए उपस्थित नहीं होती, उन पर जुर्माना लगाया जाता है, जिसका फैसला समूह की साप्ताहिक बैठक में होता है। 1995 में प्रत्येक स्त्री भागीदार को पर्याप्त मात्रा में पूरे परिवार का पेट भरने के लिए एक महीने का अनाज व दलहन मिला था जो फसल की मजदूरी के अतिरिक्त था। सरकारी कर्जों का इतना बढ़िया उपयोग कम ही देखने में आता है।

इतना ही अनूठा डेकन डेवलपमेंट सोसाइटी द्वारा कुछ भूमि पट्टा समूहों का गठन किया जाना है जिनमें केवल एकल महिलाओं (विधवा, तलाकशुदा या परित्यकता) को शामिल किया जाता है। इसके पीछे भावना यह है कि ऐसी स्त्रियों को परिवार की सहायता बहुत कम मिलती है। विवाह-विच्छेद के प्रति यह एक अलग विचारधारा है जो सरकार की सामाजिक सुरक्षा और सुधार योजनाओं में निहित पुरुष-निर्भरता से भिन्न है।

स्त्री समूहों को पट्टे पर भूमि लेने के लिए प्रोत्साहित करने के गैर-सरकारी संगठनों के उदाहरण केरल तथा कुछ अन्य राज्यों में भी देखने में आते हैं।

चौथा विकल्प एक बार फिर डेकन डेवलपमेंट सोसाइटी के अनुभवों में देखने को मिलता है। इसके तहत पुरुष किसानों की भूमि पर खेती के काम की निगरानी स्त्री समूहों द्वारा की जाती है। आंध्र प्रदेश में स्त्रियों ने जो भूमि ली वह बड़ी घटिया क्वालिटी की सीलिंग में अधिशेष घोषित जमीन थी जिसे सरकार ने भूमिहीन पुरुषों में बांटा था। यह भूमि परती पड़ी थी और इसके स्वामी परिवारों को गुजर-बसर के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली का मोहताज होना पड़ रहा था। सोसाइटी की मदद से स्त्रियों ने राज्य सरकार को सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सब्सिडी पर खर्च किए जाने वाला कुछ धन समितियों की देखरेख में इन गरीब किसानों को देने के लिए राजी कर लिया। अब किसान अपनी फसल का एक हिस्सा सामुदायिक अनाज भंडार में जमा करते हैं जो मदद के वापसी भुगतान के तौर पर होता है। समितियां किसानों को ऋण देती हैं, इसके सही उपयोग पर निगाह रखती हैं और एक सामुदायिक अन्न भंडार के लिए पैदावार से एक हिस्सा एकत्र करती हैं। भंडार में जमा अनाज प्रत्येक गांव के निर्धनतम परिवारों को कम कीमत पर बेचा जाता है। इस प्रकार यह व्यवस्था सार्वजनिक वितरण प्रणाली के विकल्प के तौर पर काम करती है। यह परियोजना इस समय लगभग 32 गांवों में

चल रही है तथा लगभग 2675 एकड़ जमीन और 1720 छोटे व सीमांत किसान इसके दायरे में आते हैं। अनुमान लगाया गया है, इस परियोजना से सैंकड़ों टन अतिरिक्त अनाज पैदा हुआ है।

पांचवीं व्यवस्था पर परीक्षण किए जाने हैं। इसके तहत गांव की गरीब स्त्रियों को एक समूह के तौर पर जमीन मिलेगी। समूह की प्रत्येक स्त्री को इसके उपयोग के अधिकार होंगे, परंतु उन्हें बेचने के अधिकार नहीं होंगे। ऐसे परिवारों की उसी गांव में रहने वाली बहू-बेटियों को इन उपयोग-अधिकारों के इस्तेमाल का हक होगा। विवाह के बाद गांव छोड़कर चली जाने वाली बेटियां ऐसे अधिकार खो देंगी, लेकिन जिस गांव में विवाह के बाद जाती हैं, वहां वे ये अधिकार स्थापित कर सकती हैं। लेकिन अगर तलाक या वैधव्य के पश्चात उन्हें अपने पैतृक गांव लौटने की जरूरत पड़े तो वे अपने अधिकार फिर से स्थापित कर सकती हैं। दूसरे शब्दों में भूमि के अधिकार औपचारिक तौर पर निवास और भूमि में काम करने से ही जुड़े रहेंगे। ऐसी ही व्यवस्था कुछ पारंपरिक व्यवस्थाओं में थी जब भूमि पर कबीलों का अधिकार हुआ करता था।

सफलता की इन कहानियों में कई महत्वपूर्ण पहलू हैं। इनमें से कुछ हैं—लिंग समानता के प्रति काम करने वाले गैर-सरकारी संगठनों की मौजूदगी, समूह-दृष्टिकोण अपनाना और भूमिहीन स्त्रियों पर विशेष ध्यान देना। गरीब स्त्रियों की आर्थिक उन्नति के कई उदाहरणों में ये पहलू देखे गए हैं। इन मामलों में असामान्य-सी बात एक चौथे तत्व की मौजूदगी है। यह पहलू हैं : स्त्रियों के लिए भूमि पर जोर देना, जो सरकार या अधिकांश गैर-सरकारी संगठनों द्वारा प्रवर्तित सूक्ष्म ऋणों से जुड़ी आय-जनक गतिविधियों के बिल्कुल विपरीत है, जो आमतौर पर कम लाभप्रद होती हैं।

जिन विकल्पों की मैंने चर्चा की है वे भूमि को प्राप्त करने और उस पर खेती करने में स्त्रियों के सामने आने वाली कई समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हैं। और जहां संयुक्त निवेश व सामूहिक प्रबंध की व्यवस्था है, ये व्यवस्थाएं छोटे और घटते आकार की समस्याओं का भी हल ढूंढती हैं।

एक सामूहिक दृष्टिकोण से पूंजीगत निवेश के लिए स्त्रियों को धन जुटाने तथा श्रम के बंटवारे और पैदावार के विपणन में भी मदद मिलती है और यदि भूमि संयुक्त नाम में हो (पांचवीं तरह की व्यवस्था के अनुरूप) तो इससे स्त्रियों की अपने पुरुष संबंधियों का दबाव झेलने और जमीन पर नियंत्रण बनाए रखने की स्थिति मजबूत होगी और इससे कौन उत्तराधिकारी होगा, इसकी समस्या भी अपने आप सुलझ जाएगी क्योंकि सभी समूहों को उपयोग अधिकार तो होगा लेकिन भूमि को त्यागने का अधिकार नहीं होगा। इससे गांव से बाहर विवाह की समस्या भी हल हो जाएगी क्योंकि स्त्री का अधिकार उसके निवास से संचालित होगा। इस पांचवें विकल्प को प्रायोगिक आधार पर कुछ क्षेत्रों में अपनाया जा सकता है।

और सामान्य रूप से खेती के बारे में ऊपर उल्लिखित स्वरूप अपने आप में कोई संपूर्ण नहीं हैं और न ही इनका सुझाव इसलिए दिया जा रहा है कि स्थानीय संदर्भ और स्थितियों पर गौर किए बिना यह सभी जगह लागू कर लिया जाए। लेकिन निश्चित ही कुछ अन्य क्षेत्रों में इनको आधार बनाकर काम किया जा सकता है। और फिर बाजार से भूमि प्राप्त करने के स्त्रियों के प्रयासों से निश्चित ही उत्तराधिकार तथा सरकारी वितरित भूमि में उनके दावों को मजबूत बनाने की दिशा में साथ-साथ काम हो सकेगा।

स्त्रियों के कल्याण और सशक्तिकरण के लिए सुरक्षित और कारगर भूमि अधिकारों का महत्वपूर्ण स्थान है। लेकिन इन्हें प्राप्त करना न तो आसान होगा और न ही समय के साथ-साथ अपने आप ही ऐसा हो जाएगा। इसके लिए लिंग समानता के पोषक और गैर-सरकारी संगठनों, विशेष कर महिला समूहों तथा ऐसे ही सरकारी संगठनों को, जो स्त्रियों के सशक्तिकरण, गरीबी और समानतापूर्ण विकास के लिए जिम्मेदार हैं, एकजुट होकर प्रयास करने होंगे। प्रत्येक गांव में गांवों के समूहों को सामूहिक रूप से भी प्रयास करने होंगे।

कुछ गैर-सरकारी संगठन भारत के कुछ हिस्सों में संपत्ति अधिकारों में कानूनी समानता के लिए मुहिम चला रहे हैं। इन्हें भारत भर में फैलाया जा सकता है। यह भी उतना ही या शायद उससे भी अधिक महत्वपूर्ण है कि कानून से परे जाकर स्त्रियों के भूमि अधिकारों से जुड़ी सामाजिक प्रथाओं को बदलने की कोशिश की जाए। लेकिन इसके लिए भी सतत प्रयासों की जरूरत होगी। लेकिन ये ऐसे प्रयास होंगे, जिनके परिणाम बहुत अच्छे निकल सकेंगे तथा स्त्रियों को आर्थिक दृष्टि से अधिक स्वतंत्र बनाया जा सकेगा, संपूर्ण पारिवारिक गरीबी घटेगी, और स्त्री का समाज में दर्जा बढ़ेगा तथा घर में और बाहर समाज में उनकी मोल-भाव की क्षमता मजबूत होगी। ❑

(सुश्री बीना अग्रवाल दिल्ली विश्वविद्यालय के आर्थिक विकास संस्थान में अर्थशास्त्र की प्रोफेसर हैं। लेख अप्रैल, 2000 में भारतीय सामाजिक संस्थान द्वारा आयोजित ग्राम सभा महिलाओं के अखिल भारतीय सम्मेलन में दिए गए उनके भाषण पर आधारित है।)

राष्ट्रीय महिला शक्ति-संपन्नता नीति-2001 *

महिलाओं की उन्नति, विकास और शक्तिसंपन्नता इस नीति का प्रमुख लक्ष्य है। संबंधित वर्गों की सक्रिय भागीदारी प्रोत्साहित करने हेतु इसका व्यापक प्रचार महिला सशक्तिकरण के कार्य में अत्यंत प्रभावी सिद्ध हो सकता है।

लक्ष्य तथा उद्देश्य

इस नीति का लक्ष्य महिलाओं की उन्नति, विकास तथा शक्ति-संपन्नता है। इस नीति का व्यापक रूप से प्रचार किया जाएगा, ताकि इसके लक्ष्य प्राप्त करने के लिए संबंधित वर्गों की सक्रिय भागीदारी को प्रोत्साहित किया जा सके। विशिष्ट रूप से इस नीति के लक्ष्यों में शामिल हैं:

(1) महिलाओं की पूर्ण क्षमता की प्राप्ति के लिए महिलाओं के पूर्ण विकास हेतु सकारात्मक आर्थिक तथा सामाजिक नीतियों के माध्यम से वातावरण का सृजन।

(2) राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा सिविल सभी क्षेत्रों में पुरुषों के साथ समान आधार पर महिलाओं द्वारा समस्त मानवाधिकारों तथा मौलिक स्वतंत्रताओं का सैद्धांतिक तथा वस्तुतः उपभोग।

(3) राष्ट्र के सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक जीवन में महिलाओं की भागीदारी तथा निर्णय-स्तर तक समान पहुंच।

(4) सभी स्तरों पर स्वास्थ्य देखभाल, स्तरीय शिक्षा, जीविका तथा व्यावसायिक मार्गदर्शन, रोजगार, समान पारिश्रमिक, व्यावसायिक स्वास्थ्य तथा सुरक्षा, सामाजिक सुरक्षा तथा सार्वजनिक पदों इत्यादि में महिलाओं की समान पहुंच।

(5) महिलाओं के साथ होने वाले सभी प्रकार के भेदभावों के उन्मूलन के उद्देश्य से कानूनी प्रणालियों का सुदृढ़ीकरण।

(6) पुरुषों तथा महिलाओं दोनों की सक्रिय भागीदारी द्वारा सामाजिक रवैये और प्रथाओं में परिवर्तन।

(7) विकास प्रक्रिया में महिला परिप्रेक्ष्यों को शामिल करना।

(8) महिलाओं तथा बालिकाओं के साथ होने वाली हिंसा के सभी रूपों तथा भेदभावों का उन्मूलन।

(9) सिविल समाज, विशेषकर महिला संगठनों के साथ भागीदारी बनाना तथा उसका सुदृढ़ीकरण।

नीति-निर्धारण

न्यायिक कानूनी प्रणालियां

- कानूनी-न्यायिक पद्धति को महिलाओं की आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील, विशेषकर घरेलू हिंसा तथा वैयक्तिक आक्रमण के मामलों में, और अधिक उत्तरदायी बनाया जाएगा। नए कानून बनाए जाएंगे तथा अपराध की गंभीरता के अनुरूप अपराधियों को सजा देने और शीघ्र न्याय सुनिश्चित करने हेतु मौजूदा कानून की समीक्षा की जाएगी।
- समुदाय तथा धार्मिक नेताओं सहित सभी पणधारियों की पूर्ण भागीदारी से तथा पहल पर इस नीति का उद्देश्य विवाह, तलाक, अनुरक्षण तथा अभिभावकता जैसे वैयक्तिक कानूनों में परिवर्तन को प्रोत्साहित करना होगा, जिससे महिलाओं के साथ होने वाले भेदभाव का उन्मूलन किया जा सके।
- पितृसत्तात्मक प्रणाली में संपत्ति के अधिकारों का विकास महिलाओं के गौण दर्जे का कारण है। इस नीति का उद्देश्य महिला-पुरुष में न्यायपूर्ण सामंजस्य से संपत्ति तथा विरासत के स्वामित्व से संबंधित कानूनों में परिवर्तन को बढ़ावा देना है।

* भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के महिला एवं बाल विकास विभाग द्वारा जारी रिपोर्ट के प्रमुख अंश।

निर्णय लेने में महिलाएं

शक्ति-संपन्नता के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सभी स्तरों पर सभी प्रक्रियाओं, जिनमें राजनैतिक निर्णय भी शामिल हैं, शक्तियों के समान उपयोग तथा निर्णय प्रक्रिया में महिलाओं की प्रतिभागिता को सुनिश्चित किया जाएगा। सभी स्तरों पर निर्णायक निकायों में महिलाओं की पूर्ण प्रतिभागिता की गारंटी के लिए उचित कदम उठाए जाएंगे।

विकास प्रक्रिया में लिंग परिप्रेक्ष्य को मुख्यधारा में लाना

महिलाओं को मुख्यधारा में लाने वाले तंत्रों की प्रगति का समय-समय पर मूल्यांकन करने के लिए समन्वय तथा प्रबोधन तंत्र बनाए जाएंगे। इसके परिणामस्वरूप महिलाओं के मुद्दों पर विशेष ध्यान दिया जाएगा तथा ये सभी संबंधित कानूनों, क्षेत्रीय नीतियों, योजनाओं तथा कार्रवाई कार्यक्रमों में परिलक्षित होंगे।

महिला आर्थिक शक्तिसंपन्नता

निर्धनता उन्मूलन

चूंकि गरीबी-रेखा से नीचे जीवन व्यतीत करने वाली अधिकांश महिलाएं ही हैं तथा प्राय: वे अत्यधिक गरीबी की स्थिति में जीवन व्यतीत करती हैं, उन्हें कठोर घरेलू परिस्थितियों तथा सामाजिक भेदभाव का सामना करना पड़ता है। अत: इस वर्ग की महिलाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति एवं समस्याओं के निदान हेतु विशेष रूप से व्यापक आर्थिक नीतियां तथा गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम चलाए जाएंगे।

अल्प-ऋण

उपभोग तथा उत्पादन हेतु ऋण तक महिलाओं की पहुंच बढ़ाने के संबंध में नए तंत्रों की स्थापना तथा मौजूदा अल्प-ऋण तंत्रों तथा अल्प वित्त संस्थाओं का सुदृढ़ीकरण किया जाएगा।

महिलाएं तथा अर्थव्यवस्था

वृहद् आर्थिक और सामाजिक नीतियां तैयार करने और उनके कार्यान्वयन में महिलाओं की प्रतिभागिता को संस्थागत बनाकर उनके परिप्रेक्ष्यों को उसमें सम्मिलित किया जाएगा। औपचारिक तथा अनौपचारिक क्षेत्रों में सामाजिक-आर्थिक विकास में उत्पादकों (गृह-आधारित कार्यकर्ताओं सहित) तथा कार्यकर्ताओं के रूप में महिलाओं के योगदान को मान्यता प्रदान की जाएगी तथा रोजगार और अन्य कार्य परिस्थितियों से संबंधित उपयुक्त नीतियां तैयार की जाएंगी। इन उपायों में निम्नलिखित शामिल होंगे:

(1) उत्पादकों तथा कार्मिकों के रूप में महिलाओं के योगदान को परिलक्षित करने के लिए जहां आवश्यक होगा, जैसे कि गणना अभिलेखों में, पारंपरिक संकल्पनाओं का पुनर्विवेचन और उन्हें पुनर्भाषित किया जाएगा।

(2) गौण तथा मुख्य खातों की तैयारी।

(3) उपर्युक्त (1) तथा (2) के लिए उपयुक्त कार्यविधियों का विकास।

विश्व व्यापीकरण

विश्व-व्यापीकरण की प्रक्रिया से उत्पन्न नकारात्मक सामाजिक तथा आर्थिक प्रभावों को दूर करने के लिए महिलाओं की क्षमता बढ़ाने तथा उन्हें सशक्त बनाने हेतु कार्यनीतियां तैयार की जाएंगी।

महिलाएं तथा कृषि

उत्पादनकर्ताओं के रूप में कृषि तथा संबद्ध क्षेत्रों में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका को ध्यान में रखते हुए महिलाओं की संख्या के अनुपात में प्रशिक्षण, विस्तार तथा विभिन्न कार्यक्रमों के लाभों तक उनकी पहुंच सुनिश्चित करने के समेकित प्रयास किए जाएंगे।

महिलाएं तथा उद्योग

- विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों में सहभागिता हेतु उन्हें श्रम विधान, सामाजिक सुरक्षा तथा अन्य समर्थन सेवाओं के मामले में वृहत्त समर्थन दिया जाएगा।
- वर्तमान समय में महिलाएं, यदि वे चाहें तो भी, रात्रि की पारी में कारखानों में कार्य नहीं कर सकतीं। कारखानों में रात्रि की पारी में कार्य करने के लिए महिलाओं को सक्षम बनाने हेतु उपयुक्त उपाय किए जाएंगे। उन्हें सुरक्षा, यातायात के साधन इत्यादि समर्थन सेवाएं दी जाएंगी।

समर्थन सेवाएं

महिलाओं के लिए समर्थन सेवाएं तथा बाल देखभाल सुविधाएं, जिनमें कार्यस्थलों तथा शैक्षणिक संस्थानों में शिशुगृह बनाना तथा वृद्ध एवं विकलांगों हेतु गृह शामिल हैं, का विस्तार किया जाएगा और सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक जीवन में उनके पूर्ण सहयोग हेतु सही वातावरण बनाने के लिए उनमें सुधार किया जाएगा।

महिलाओं की सामाजिक शक्तिसंपन्नता

शिक्षा

महिलाओं तथा बालिकाओं के लिए शिक्षा के समान अवसर सुनिश्चित किए जाएंगे। भेदभाव को समाप्त करने, शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने, निरक्षरता का उन्मूलन करने, महिलाओं के अनुकूल शिक्षा प्रणाली के सृजन करने, स्कूलों में प्रवेश बढ़ाने तथा बालिकाओं की स्कूल छोड़ने की दर कम से कम करने तथा शिक्षा-स्तर में सुधार तथा शिक्षा के साथ-साथ महिलाओं के व्यवसायों/तकनीकी कौशलों के विकास हेतु विशेष उपाय किए जाएंगे।

स्वास्थ्य

- महिलाओं के स्वास्थ्य के प्रति समग्र दृष्टिकोण अपनाया जाएगा, जिसमें पोषण और स्वास्थ्य सेवाएं दोनों शामिल हैं। जीवन के सभी स्तरों पर महिलाओं और लड़कियों की स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताओं की ओर विशेष ध्यान दिया जाएगा। शिशु मृत्यु-दर और मातृ मृत्यु-दर में कमी लाना प्राथमिकता वाले क्षेत्र हैं, क्योंकि ये मानव विकास के महत्वपूर्ण संसूचक हैं।
- शिशु और मातृ मृत्यु तथा शीघ्र विवाह की समस्याओं का कारगर तरीके से मुकाबला करने के लिए मृत्यु, जन्म और मृत्यु के पंजीकरण का कड़ा कार्यान्वयन सुनिश्चित किया जाएगा और विवाह का पंजीकरण अनिवार्य बनाया जाएगा।
- जनसंख्या स्थिरीकरण के संबंध में राष्ट्रीय जनसंख्या नीति (2000) की प्रतिबद्धता के अनुसार, इस नीति में महिलाओं और पुरुषों की परिवार नियोजन के अपनी पसंद के सुरक्षित, कारगर और सस्ते तरीके अपनाने की आवश्यकता को मान्यता प्रदान की गई है।
- स्वास्थ्य देखभाल और पोषाहार के संबंध में महिलाओं के पारंपरिक ज्ञान को समुचित प्रलेखन के माध्यम से मान्यता प्रदान की जाएगी और उसके उपयोग को प्रोत्साहन दिया जाएगा।

पोषाहार

- तीनों महत्वपूर्ण अवस्थाओं अर्थात शैशवावस्था और बाल्यकाल, किशोरावस्था तथा प्रजननकाल में महिलाओं को कुपोषण और बीमारी के उच्च खतरे को दृष्टिगत रखते हुए, जीवन के सभी स्तरों पर महिलाओं की पोषण संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा।
- पोषाहार के संबंध में परिवारों में असंतुलन के मुद्दों को हल करने के लिए तथा गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पोषाहार शिक्षा का व्यापक उपयोग किया जाएगा।

पेयजल और स्वच्छता

विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों तथा शहरी झोपड़-पट्टियों में, परिवारों की पहुंच के भीतर सुरक्षित पेय जल, मल-जल निपटान, शौच सुविधाओं तथा स्वच्छता के प्रावधान के संबंध में महिलाओं की आवश्यकताओं की ओर विशेष ध्यान दिया जाएगा।

आवास और आश्रय

ग्रामीण व शहरी दोनों क्षेत्रों में आवास नीतियों, आवास कालोनियों की आयोजना तथा आश्रय के प्रावधान में महिला परिप्रेक्ष्यों को शामिल किया जाएगा। महिलाओं के लिए, जिनमें एकल महिलाएं, परिवार की मुखिया महिलाएं, कामकाजी महिलाएं, छात्राएं, प्रशिक्षु तथा प्रशिक्षार्थी महिलाएं शामिल हैं, पर्याप्त और सुरक्षित आवास प्रदान करने की ओर विशेष ध्यान दिया जाएगा।

पर्यावरण

पर्यावरण संरक्षण तथा बहाली संबंधी नीतियों और कार्यक्रमों में महिलाओं को शामिल किया जाएगा और उनके परिप्रेक्ष्य परिलक्षित होंगे। सौर ऊर्जा, बायोगैस, धूंआ-रहित चूल्हे के प्रयोग तथा अन्य ग्रामीण अनुप्रयोगों को बढ़ाने के कार्य में महिलाओं को शामिल किया जाएगा, ताकि पारिवारिक प्रणाली को प्रभावित करने तथा ग्रामीण महिलाओं को जीवन-शैली में परिवर्तन लाने में इन उपायों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सके।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी

विज्ञान और प्रौद्योगिकी में महिलाओं की अधिक भागीदारी प्राप्त करने के कार्यक्रमों को सुदृढ़ बनाया जाएगा। ऐसे क्षेत्रों में महिलाओं के प्रशिक्षण के विशेष उपाय किए जाएंगे, जिनमें उन्हें विशेष कौशल प्राप्त है, जैसे संचार और सूचना प्रौद्योगिकी। महिलाओं के कठिन शारीरिक श्रम को कम करने तथा उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप उपयुक्त प्रौद्योगिकियों का विकास करने की ओर विशेष ध्यान दिया जाएगा।

कठिन परिस्थितियों में महिलाएं

महिलाओं की अलग-अलग परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए तथा विशेष रूप से वंचित वर्गों की आवश्यकताओं को देखते हुए, उन्हें विशेष सहायता प्रदान करने के उपाय और कार्यक्रम शुरू किए जाएंगे।

महिलाओं के साथ हिंसा

महिलाओं के साथ सभी प्रकार की हिंसा की घटनाओं, चाहे शारीरिक हिंसा हो या मानसिक, चाहे घर में हो या समाज में, जिसमें रीति-रिवाजों, परम्पराओं अथवा मान्य प्रथाओं के फलस्वरूप होने वाली हिंसा भी शामिल है, को रोकने के लिए कारगर उपाय किए जाएंगे। महिलाओं और लड़कियों के अवैध व्यापार को रोकने के लिए कार्यक्रमों और उपायों पर विशेष बल दिया जाएगा।

बालिका के अधिकार

परिवार के भीतर और परिवार के बाहर बालिकाओं के साथ सभी प्रकार के भेदभाव और उनके अधिकारों के उल्लंघन को निवारक और दण्डात्मक दोनों प्रकार के उपाय करके समाप्त किया जाएगा। ये उपाय विशिष्ट रूप से प्रसव-पूर्व लिंग निर्धारण, बालिका भ्रूण-हत्या, बालिका शिशु-हत्या, बाल विवाह, बाल-शोषण तथा बाल वेश्यावृत्ति आदि की प्रथाओं के विरुद्ध कानूनों के कड़े प्रवर्तन से संबंधित होंगे।

जन-प्रचार माध्यम

लड़कियों और महिलाओं की मानव गरिमा के अनुरूप छवि प्रदर्शित करने के लिए जन-प्रचार माध्यमों का प्रयोग किया जाएगा। विशेषकर सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में महिलाओं की समान पहुंच सुनिश्चित करने के लिए सभी स्तरों पर निजी क्षेत्र के भागीदारों तथा प्रचार माध्यम नेटवर्क को शामिल किया जाएगा।

परिचालन कार्यनीतियां

कार्ययोजनाएं

केन्द्रीय/राज्य महिला एवं बाल विकास विभागों तथा राष्ट्रीय/राज्य महिला आयोगों के साथ परामर्श की प्रतिभागी प्रक्रिया के माध्यम से इस नीति को ठोस कार्रवाई में बदलने के लिए सभी केन्द्रीय और राज्य मंत्रालय समयबद्ध कार्ययोजनाएं तैयार करेंगे। योजनाओं में विशेष रूप से निम्नलिखित शामिल होंगी:

(i) वर्ष 2010 तक प्राप्त किए जाने वाले माप-योग्य लक्ष्य;

(ii) संसाधनों का अभिनिर्धारण और प्रतिबद्धता;

(iii) कार्य बिन्दुओं के कार्यान्वयन हेतु दायित्व;

(iv) कार्य बिन्दुओं तथा नीतियों का कुशल प्रबोधन, समीक्षा और महिला प्रभाव मूल्यांकन सुनिश्चित करने के लिए संरचनाएं एवं तंत्र और;

(v) बजट प्रक्रिया में महिला परिप्रेक्ष्य शुरू करना।

- बेहतर आयोजना और कार्यक्रम निरूपण तथा संसाधनों के पर्याप्त आबंटन में सहायता प्रदान करने के लिए, विशेषीकृत अभिकरणों के साथ नेटवर्किंग से महिला विकास संसूचक विकसित किए जाएंगे।
- केन्द्रीय और राज्य सरकारों तथा सार्वजनिक और निजी क्षेत्र में अनुसंधान और शैक्षणिक संस्थाओं के सभी प्रारंभिक आंकड़ा संग्रहण अभिकरणों द्वारा महिलाओं और पुरुषों के संबंध में अलग-अलग आंकड़े इकट्ठे किए जाएंगे। इससे नीतियों की सार्थक आयोजना और मूल्यांकन में मदद मिलेगी।

संस्थागत तंत्र

महिलाओं की उन्नति को बढ़ावा देने के लिए केन्द्रीय और राज्य-स्तरों पर मौजूदा संस्थागत तंत्रों को सुदृढ़ बनाया जाएगा। यह कार्य उपयुक्त कार्यक्रमों के माध्यम से किया जाएगा।

- नीति के संचालन पर नियमित आधार पर निगरानी रखने के लिए राष्ट्रीय और राज्य परिषदों का गठन किया जाएगा। इनमें संबंधित विभागों/मंत्रालयों, राष्ट्रीय और राज्य महिला आयोगों, समाज कल्याण बोर्डों, गैर-सरकारी संगठनों, महिला संगठनों, निगमित क्षेत्र, व्यापार संघों, वित्तीय संस्थाओं के प्रतिनिधि, शिक्षाविद् विशेषज्ञ और सामाजिक कार्यकर्ता, आदि शामिल होंगे। नीति के अंतर्गत शुरू किए गए कार्यक्रमों की प्रगति के बारे में राष्ट्रीय विकास परिषद को भी समय-समय पर सलाह और टिप्पणियों के लिए सूचित किया जाएगा।
- महिलाओं के संबंध में राष्ट्रीय और राज्य संसाधन केन्द्र स्थापित किए जाएंगे, जिनका दायित्व सूचना का संग्रहण और प्रचार करना, अनुसंधान कार्य करना, सर्वेक्षण आयोजित करना, प्रशिक्षण और जागरुकता विकास कार्यक्रम कार्यान्वित करना, आदि होगा। ये केन्द्र उपयुक्त सूचना नेटवर्किंग प्रणालियों के जरिए महिला अध्ययन केन्द्रों तथा अन्य अनुसंधान और शैक्षणिक संस्थाओं से जुड़े होंगे।
- जिला-स्तर पर संस्थाओं को सुदृढ़ बनाया जाएगा और बुनियादी- स्तर पर महिलाओं को सरकार द्वारा अपने कार्यक्रमों के माध्यम से उन्हें आंगनवाड़ी/ग्राम/कस्बा स्तर पर स्व-सहायता समूहों में संगठित और सुदृढ़ करने में सहायता प्रदान की जाएगी।

संसाधन प्रबंधन

नीति के कार्यान्वयन के लिए संबंधित विभागों, वित्तीय ऋण संस्थाओं तथा बैंकों, निजी क्षेत्र, सिविल समाज तथा अन्य संबंधित संस्थाओं द्वारा पर्याप्त वित्तीय, मानव और विपणन संसाधनों की उपलब्धता की व्यवस्था की जाएगी। इस प्रक्रिया में निम्नलिखित शामिल होंगे:

(क) महिलाओं को मिलने वाले लाभों का मूल्यांकन और जैंडर बजटिंग के माध्यम से उनसे संबंधित कार्यक्रमों हेतु संसाधन आबंटन। इन स्कीमों के अंतर्गत, महिलाओं को अधिकतम लाभ प्रदान करने के लिए नीतियों में उपयुक्त परिवर्तन किए जाएंगे।

(ख) संबंधित विभागों द्वारा उक्त (क) पर आधारित पहले निर्धारित नीति के विकास और संवर्धन हेतु पर्याप्त संसाधन आबंटन।

(ग) क्षेत्र-स्तर पर स्वास्थ्य, ग्रामीण विकास, शिक्षा तथा महिला एवं बाल विकास विभागों के कार्मिकों और ग्राम-स्तर पर अन्य कार्यकर्ताओं के बीच संपर्क विकसित करना।

(घ) उपयुक्त नीतिगत कार्यक्रमों के माध्यम से बैंकों तथा वित्तीय ऋण संस्थाओं द्वारा ऋण संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति और महिला एवं बाल विकास विभाग के समन्वय से नई संस्थाओं का विकास।

नौवीं पंचवर्षीय योजना में पारित महिला घटक योजना की इस कार्यनीति को कारगर तरीके से कार्यान्वित किया जाएगा कि सभी मंत्रालयों और विभागों से महिलाओं के लिए कम से कम

30 प्रतिशत लाभ/राशि रखी जानी चाहिए, ताकि सभी संबंधित क्षेत्रों द्वारा महिलाओं और लड़कियों की आवश्यकताओं और हितों को ध्यान में रखा जा सके। महिलाओं की प्रगति के कार्यक्रमों और परियोजनाओं में सहायता के लिए निजी क्षेत्र से पूंजी निवेश प्राप्त करने के प्रयास किए जाएंगे।

कानून

नीति के कार्यान्वयन हेतु अभिनिर्धारित विभागों द्वारा वर्तमान विधायी ढांचों की समीक्षा की जाएगी और अतिरिक्त विधायी उपाय किए जाएंगे। यह प्रक्रिया 2000-2003 अवधि में पूरी की जाएगी। सिविल समाज, राष्ट्रीय महिला आयोग तथा महिला एवं बाल विकास विभाग द्वारा परस्पर परामर्श की प्रक्रिया द्वारा अपेक्षित विशिष्ट उपाय विकसित किए जाएंगे।

सिविल समाज और समुदाय की भागीदारी द्वारा कानून के कारगर कार्यान्वयन को बढ़ावा दिया जाएगा। आवश्यकता होने पर कानून में उपयुक्त परिवर्तन किए जाएंगे। इसके अलावा, कानूनों को कारगर ढंग से कार्यान्वित करने के लिए निम्नलिखित विशिष्ट उपाय किए जाएंगे:

(क) महिलाओं के साथ हिंसा और उन पर अत्याचारों की शिकायतों पर विशेष ध्यान देते हुए सभी संबंधित कानूनी प्रावधानों का कड़ा प्रवर्तन और शीघ्र निपटान सुनिश्चित किया जाएगा।

(ख) कार्य स्थलों पर यौन उत्पीड़न को रोकने और दंडित करने, संगठित/असंगठित क्षेत्र में महिला कर्मचारियों की सुरक्षा तथा समान पारिश्रमित अधिनियम और न्यूनतम मजदूरी अधिनियम जैसे संबंधित कानूनों का कड़ा प्रवर्तन सुनिश्चित किया जाएगा।

(ग) महिलाओं के साथ अपराधों, उनकी घटनाओं, रोकथाम, जांच, पता लगाने और मुकदमा चलाने के मामलों की सभी अपराध समीक्षा मंचों तथा केन्द्रीय, राज्य और जिला-स्तरों पर होने वाले सम्मेलनों में नियमित रूप से समीक्षा की जाएगी। मान्यता प्राप्त स्थानीय स्वैच्छिक संगठनों को महिलाओं और लड़कियों के साथ की जाने वाली हिंसा एवं अत्याचारों के संबंध में शिकायतें दर्ज करने और शिकायतों के पंजीकरण, जांच तथा कानूनी कार्यवाही शुरू करने के लिए प्राधिकृत किया जाएगा।

(घ) महिलाओं के साथ हिंसा और अत्याचारों को समाप्त करने के लिए पुलिस स्टेशनों में महिला कक्षों, महिला पुलिस स्टेशनों, परिवार न्यायालयों, महिला न्यायालयों, परामर्श केन्द्रों, कानूनी सहायता केन्द्रों तथा न्याय पंचायतों को सुदृढ़ बनाया जाएगा और उनका विस्तार किया जाएगा।

(ङ) विशेष रूप से तैयार किए गए कानूनी साक्षरता कार्यक्रमों और अधिकार सूचना कार्यक्रमों के माध्यम से महिलाओं के कानूनी अधिकारों, मानवाधिकारों और अन्य पात्रताओं के सभी पहलुओं पर सूचना का व्यापक प्रचार किया जाएगा।

महिला संचेतना

नीति और कार्यक्रम निर्माताओं, कार्यान्वयन और विकास अभिकरणों, विधि प्रवर्तन तंत्र तथा न्यायपालिका और गैर-सरकारी संगठनों पर विशेष बल देते हुए राज्य के कार्यकारी, विधायी और न्यायिक स्कन्धों के कार्मिकों का प्रशिक्षण शुरू किया जाएगा। अन्य उपायों में निम्नलिखित शामिल होंगे:

(क) महिला मुद्दों और उनके मानवाधिकारों के प्रति समाज में जागरुकता बढ़ाना।

(ख) महिला मुद्दों तथा मानवाधिकारों को पाठ्यचर्या और शैक्षणिक सामग्री में शामिल करने के लिए उनकी समीक्षा।

(ग) सभी सार्वजनिक दस्तावेजों और कानूनी प्रलेखों से ऐसे सभी संदर्भों को हटाना, जो महिलाओं की प्रतिष्ठा के प्रतिकूल हों।

(घ) महिलाओं की समानता और शक्ति-संपन्नता से संबंधित सामाजिक संदेशों के संप्रेषण हेतु विभिन्न प्रकार के प्रचार-माध्यमों का प्रयोग।

पंचायती राज संस्थाएं

भारत के संविधान में 73वां और 74वां संशोधन (1993) महिलाओं की समान पहुंच सुनिश्चित करने और राजनैतिक शक्ति संरचना में अधिक भागीदारी प्रदान करने की दिशा में एक उपलब्धि है। राष्ट्रीय महिला शक्ति-संपन्नता नीति को बुनियादी-स्तर पर कार्यान्वित और निष्पादित करने में पंचायती राज संस्थाओं तथा स्थानीय स्व-शासन को सक्रिय रूप से शामिल किया जाएगा।

स्वैच्छिक क्षेत्र के संगठनों के साथ भागीदारी

शिक्षा, प्रशिक्षण और अनुसंधान से संबंधित स्वैच्छिक संगठनों, संघों, फेडरेशनों, व्यापार संघों, गैर-सरकारी संगठनों, महिला संगठनों तथा संस्थाओं की महिलाओं को प्रभावित करने वाली सभी नीतियों और कार्यक्रमों के निरुपण, कार्यान्वयन, प्रबोधन और समीक्षा में भागीदारी सुनिश्चित की जाएगी।

अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग

महिला शक्ति-सम्पन्नता के लिए अंतर्राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और उप-क्षेत्रीय सहयोग को अनुभवों के आदान-प्रदान, विचारों तथा प्रौद्योगिकी के विनिमय, संस्थाओं तथा संगठनों के साथ नेटवर्किंग के जरिए और द्वि-पक्षीय तथा बहु-पक्षीय भागीदारी के माध्यम से प्रोत्साहित किया जाता रहेगा। ❑

MAHATMA GANDHI CD

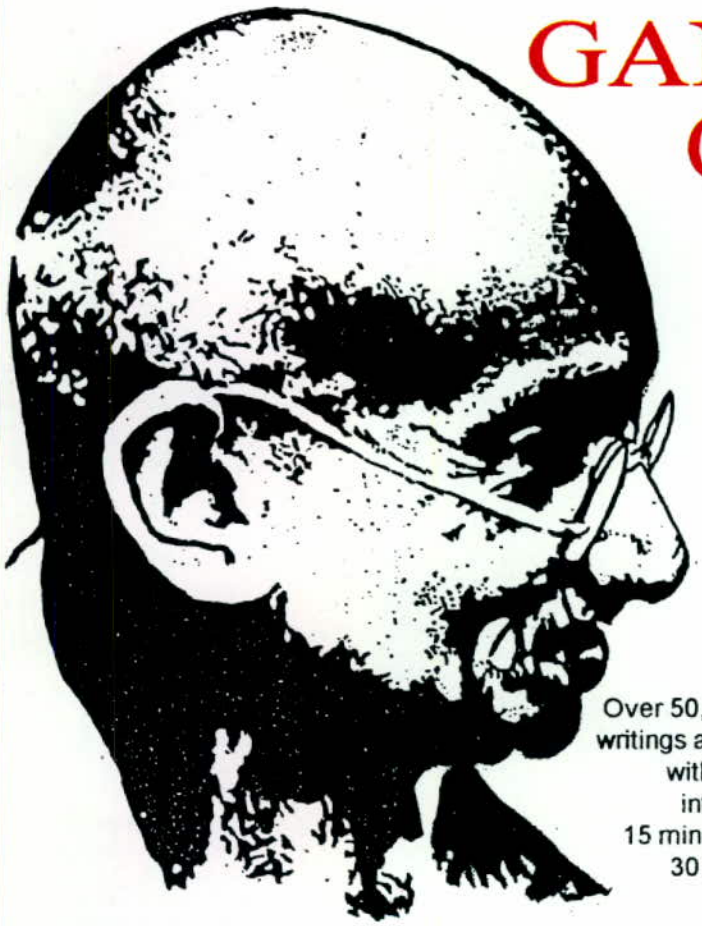

A

comprehensive
Multi-media CD
on Mahatma Gandhi.
Over 50,000 pages of Gandhiji's
writings arranged chronologically
with intensive indexing and
interactive retrieval paths.
15 minutes of Gandhiji's voice.
30 m nutes of film footage.

Based on *Collected Works of Mahatma Gandhi* brought out by
Publications Division in 100 volumes.
Price: Rs.2,500/- per CD.

For business enquiries, contact our sales outlets at:

Patiala House, Tilak Marg, **New Delhi, Ph.3387983**; Super Bazar, Connaught Circus, **New Delhi,** Ph.3313308; Hall No.196, Old Secretariat, **Delhi, Ph.2518906**; Rajaji Bhavan, Besant Nagar, **Chennai,** Ph.4917673; 8, Esplanade East, **Calcutta, Ph.2488030**; Bihar State Cooperative Bank Building, Ashoka Rajpath, **Patna,** Ph.653823; Press Road, **Thiruvananthapuram, Ph.330650**; 27/6, Ram Mohan Rai Marg, **Lucknow,** Ph.208004; Commerce House, Currimbhoy Road, Ballard Pier, **Mumbai, Ph.2610081**; State Archaeological Museum Building, Public Gardens, **Hyderabad,** Ph.236393; 1st Floor, F-Wing, Kendriya Sadan, Koramangala, **Bangalore,** Ph.5537244; CGO Bhavan, A Wing, A.B.Road, **Indore**; 80, Malviya Nagar, **Bhopal**; B-7/B Bhawani Singh Road, **Jaipur.**

सुरेश चोपड़ा, महानिदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110 001 से प्रकाशित एवं मुद्रित तथा तारा आर्ट प्रेस, बी-4, हंस भवन, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002 में मुद्रित। दूरभाष : 3378626, 3379686

प्रधान संपादक : सुभाष सेतिया

रजि. सं. डी. एल. 12036/2001 लाइसेंस संख्या यू (डी.एन.)-53/2001 डाक व्यय की पहली अदायगी किए बिना डाक में डालने के लिए लाइसेंस प्राप्त पंजी सं. 951/57
Reg. No. D.L. 12036/2001 R & Licence No. U (D.N.)-53/2001 to post without pre-payment at RMS, Delhi. R.N. 951/57

Information is Power : Be Informed.

Read YOJANA

A monthly journal, the only one of its kind, covering the whole gamut of development, socio-economic issues and current affairs.

Published in Assamese, Bengali, English, Gujarati, Hindi, Kannada, Malayalam, Marathi, Oriya, Punjabi, Tamil, Telugu and Urdu - reaching out to people country-wide.

Join the ranks of 5,00,000 discerning readers who opt for YOJANA.

YOJANA has incisive, authentic and well researched articles written by experts.

Have a cutting edge, be ahead of others. Subscribe today.

Subscription Rates : 1 Yr. - Rs.70/-; 2 Yrs. - Rs.135/-; 3 Yrs. - Rs.190/-.

Subscription by DD / MO / IPO in the name of Director, Publications Division, can be sent to :

The Advertisement & Circulation Manager, Publications Division, East Block-IV, Level-VII, R.K. Puram, New Delhi-110066. Tel. 6105590; Fax: 6175516 / 6193012.

Subscriptions will also be accepted at our sales emporia:

• Patiala House, Tilak Marg, **New Delhi**, Ph. 011-3387983; • Super Bazar, Connaught Circus, **New Delhi**, Ph. 011-3313308; • Hall No.196, Old Secretariat, **Delhi**, Ph. 011-3968906; • Rajaji Bhavan, Besant Nagar, **Chennai**, Ph. 044-4917673; • 8, Esplanade East, **Calcutta**, Ph. 033-2488030; • Bihar State Cooperative Building, Ashoka Rajpath, **Patna**, Ph. 0612-653823; • Press Road, **Thiruvananthapuram**, Ph. 0471-330650, • 27/6, Ram Mohan Rai Marg, **Lucknow**, Ph. 0522-208004; • Commerce House, Currimbhoy Road, Ballard Pier, **Mumbai**, Ph. 022-2610081; • State Archaeological Museum Building, Public Gardens, **Hyderabad**, Ph. 040-236393; • 1st Floor, F-Wing, Kendriya Sadan. Koramangala, **Bangalore**, Ph. 080-5537244; • C.G.O. Bhavan, 'A' Wing, A.B. Road, **Indore**; • 80, Malviya Nagar, **Bhopal**; • B-7/B, Bhawani Singh Road, **Jaipur**.

For Yojana Tamil, Telugu, Malayalam, Kannada, Gujarati, Marathi, Bengali and Assamese, please enrol yourself with Editors of the respective magazines at the addresses given below:

Editor, Yojana (Marathi), Room No.38, 4th Floor, Yusuf Building, Veer Nariman Road, **Mumbai**, Ph. 022-2040461;

Editor, Yojana (Gujarati), Ambika Complex, 1st Floor, Above UCO Bank, Paldi, **Ahmedabad**, Ph. 079-6638670;

Editor, Yojana (Assamese), Naujan Road, Uzan Bazar, **Guwahati**, Ph. 0361-516792;

Editor, Yojana (Bengali), 8, Esplanade East, Ground Floor, **Calcutta**, Ph. 033-2482576;

Editor, Yojana (Tamil), 'A' Wing, Ground Floor, Shastri Bhavan, **Chennai**, Ph. 044-8272382;

Editor, Yojana (Telugu), 10-2-1, F.D.C. Complex, AC Guards, **Hyderabad**, Ph. 040-236579;

Editor, Yojana (Malayalam), 'Reshmi', 14/916, Vazhuthacadu, **Thiruvananthapuram**, Ph. 0471-63826;

Editor, Yojana (Kannada), 1st Floor, 'F' Wing, Kendriya Sadan, Koramangala, **Bangalore**, Ph. 080-5537244.